

धम्मपद

सम्पादक और अनुवादक
अवध किशोर नारायण वी० ए० (भ्रॉन्सः).



प्रकाशक
महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस ।

प्रकाराक
मिहु संघरक
मन्त्री,
महाबोधि समा, अष्टिपत्तन,
सारनाथ (बनारस)

मूल्य ११)

छात्रक
श्रीनाथदास अग्रवाल,
दार्म ट्रेडुल प्रेस, बनारस ।
१९९-१-४९

प्रकाशकीय निवेदन

हिन्दी पाठकों के सम्मुख महाबोधि प्रथमाला की नव पुष्प 'धम्मपद'—मूल पालि, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद—उपलब्ध करने हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। पुस्तक के मुद्रणार्थ लंका की श्रद्धालु बौद्ध उपासिका चरणाडल्ले कुमारी हामी (अ. ५.००) ४० का दान दिया है। हम प्रार्थना करते हैं कि बुद्ध-धर्म-संघ के विरल के अनुभास से आप का कल्याण हो।

Publisher's note

It gives me great pleasure in publishing the present number of the Mahabodhi publication-series, a valuable book like *The Dhammapada*, together with its Pali text, Sanskrit rendering and Hindi translation. Mrs Warakaulle Tikiri Kumarihamy, Warakaulle Walauwa, Wattappola, Kadugannawa, Ceylon, has been kind enough to donate a sum of Rs 500/ for the publication of the book. I invoke the blessings of the Triple Gem of the Buddha, Dhamma and Saṃgha on her for this noble gift.

प्राक्थन

बौद्ध संसार में 'धम्मपद' का महत्व और प्रचार उसी भाँति व्यापक है जैसे भारतवर्ष में 'गीता' का। लाखों श्रद्धानु बौद्ध नित्य प्रति 'धम्मपद' का पाठ करते हैं, और इसके अमर संदेश से अपने जीवन में प्रेरणा ग्रहण करते हैं। मूल पालि श्लोक इतने सरल और मर्मस्पर्शी हैं कि हिन्दी पाठकों को अनायास जीभ पर चढ़ जाते हैं। पालि त्रिपिटक के विशाल साहित्य में 'धम्मपद' का क्या स्थान है यह निम्नलिखित तालिका से प्रगट होगा—

त्रिपिटक

।

इस तरह, धम्मपद त्रिपिटक के सूत्रपिटक के सुद्धक निकाय के प्रन्द्रह पन्थों में से एक है।

भगवान् बुद्ध के उपदेशों का सर्वांगीण संग्रह 'धम्मपद' जैसी और कोई पुस्तिका नहीं है। इसका अधिक से अधिक प्रचार हो इसमें राष्ट्रका कल्याण है।

अपने प्रिय शिष्य उपासक अवध किशोर नारायण बी० ए० की इस प्रथम रचना को देख कर बड़ा हर्ष होता है। हम आशीर्वाद करते हैं कि त्रिरत्न के अनुभाव से वह दीर्घजीवी हो और शासन की आधक से अधिक सेवा कर सके।

कुछ वर्ष पूर्व श्री महापण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखित धम्मपद का ठीक ऐसा ही संस्करण महाबोधि सभा द्वारा प्रकाशित हुआ था। उसके समाप्त हो जाने के बाद से मूल पालि श्लोकों के साथ संस्कृत छाया की बड़ी मांग थी। प्रस्तुत पुस्तक उस प्रभाव की पूर्ति करती है।

हिन्दी अनुवाद सुंदर हुआ है। किंतु संस्कृत छाया को दूसरे संस्करण में पूर्णतः शुद्ध कर लेना आवश्यक है।

नमो तस्मै भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्य

धम्मपद

१—यमकवग्ग

स्थान—यावस्ती



व्यक्ति—चक्रगुप्त (धेर)

१—मनोपुञ्जकमा धम्मा मनोसेट्ठ्या मनोमया ।

मनसा चे पट्टुट्टेन भासति वा करोति वा ।

ततो नं दुक्खमन्येति चक्रं व वहतो पदं ॥ १ ॥

(मनःपूर्वकमा धर्मा मनःश्रेष्ठः मनोमया

मनसा चेन्द्रदुष्टेन भासते वा करोति वा ।

ततस्तं दुःखमन्येति चक्रमिय वहतः पदम् ॥ १ ॥)

अनुवाद—(भर्ता या पुरी) सारी प्रवृत्तियाँ चित्त के अनुसार ही होती हैं; चित्त ही उनके मन्त्र का निर्धारक है; वे चित्त रूप ही होते हैं। यदि कोई कृत्ति चित्त में योग्यता या कर्ता है तो दुःख टपका अनुसरण करता है, जैसे मादी घोषणे काने घंट के पीर के पीछे-पीछे टपका करता ।

(मनःपूर्वङ्गमा धर्मा मन श्रेष्ठा मनोमयाः ।
मनसा चेत् प्रसन्नेन भापते वा करोति वा ।
ततस्तं सुखमन्वेति छायेवानपायिनी ॥ २ ॥)

अनुवाद—^{२५}सारी प्रवृत्तियाँ चित्त के अनुसार ही होती हैं; चित्त ही उनके स्वरूपका निर्णायक है; वे चित्तरूप हो जाती हैं। यदि कोई साफ चित्त से बोलता या करता है तो कभी भी साथ न छोड़ने वाली छाया की तरह सुख उसका अनुसरण करता है।

भावस्ती (जेतवन)

शुल्लतिस्स (थेर)

३—अकोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।

ये च तं उपनहन्ति वैरं तेसं न सम्मति ॥ ३ ॥

(अक्रोशीत् मां अबधीत् मां अजैपीत् मां अहार्पीत् मे ।

ये च तत् उपनहन्ति वैरं तेषां न शाम्यति ॥ ३ ॥)

उसने मुझे डाटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा खे लिया—जो मन में ऐसी बातें लाते रहते हैं उनका वैर शान्त नहीं होता।

४—अकोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।

ये तं न उपनहन्ति वैरं तेसूपसम्मति ॥ ४ ॥

(अक्रोशीत् मां अबधीत् मां अजैपीत् मां अहार्पीत् मे !

ये तत् नोपनहन्ति वैरं तेषूपशाम्यति ॥ ४ ॥)

उसने मुझे डाटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा खे लिया—जो मन में ऐसी बातें नहीं लाते उनका वैर शान्त हो जाता है।

धावन्ती (विभन)

काली (पत्तिगती)

५—न हि वैरेण वैरानि सम्भन्तीथ कुदाचनं ।

अधैरेण च सम्भन्ति एस धम्मो सतन्तवो ॥ ५ ॥

(न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन ।

अधैरेण च शाम्यन्ति, एष धर्मः सताननः ॥ ५ ॥)

इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होते । अधैर (= ईर्ष्या) से ही वैर शान्त होने हैं । यही यज्ञ का नियम है ।

राम की दृष्टि से देखते विहार करने वाले, इन्द्रियों में असयत, भोजन में मात्रा न जानने वाले, आलसी तथा वीर्यरहित पुरुषको पाप उसी प्रकार भ्रष्ट कर देता है, जैसे वायु दुर्बल वृक्ष को ।

वे २१५ २६२

८—असुमानुपस्तिं विहरन्तं इन्द्रियेषु सुसंवृतं ।

भोजनमिह च मत्तञ्जुं सद्धं आरब्धवीरियं ।

तं वे नपप्सहत्ति मारो घातो सेलं 'व पब्बतं ॥ ८ ॥

२१५ (अशुममनुपश्यन्तं विहरन्तं इन्द्रियेषु सुसंवृतम् ।

भोजने च मात्राज्ञं श्रद्धं आरब्धवीर्यम् ।

तैवै न प्रसहते मारो घातः शैलमिव पर्वतम् ॥ ८ ॥)

वैराग्य की दृष्टिसे देखते विहार करने वाले, इन्द्रियों में पूर्ण संयत, भोजन में मात्रा जानने वाले, श्रद्धायुक्त तथा उत्साहशील पुरुष को पाप भ्रष्ट नहीं कर सकता, वायु जैसे शैल पर्वत को ।

भावस्ती (जेतवन)

देवदत्त

९—अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति ।

अपेतो दमसच्चेन न स कासावमरहति ॥ ९ ॥

(अनिक्कपाय कापाय यो वत्थं परिधास्यति ।

अपेतो दमसत्त्याभ्यां न स कापायमर्हति ॥ ९ ॥)

विना चित्तमलो (= कसाव) को हटाये जो कापाय वत्त धारण करता है वह रुचम और सत्य से हीन कापाय वत्त का अधिकारी नहीं है ।

१०—यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो ।

उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति ॥ १० ॥

(यश्च वान्तकपायः स्यात् शीलेषु सुसमाहितः ।

उपेतो दम-सत्याभ्यां स वै कापायमर्हति ॥१०॥)

जिसने चित्तमलों का त्याग कर दिया है, शील पर प्रतिष्ठित है, संयम और सत्य से युक्त है, वही कापाय वध का अधिकारी है ।

राजगृह (वेणुवन)

संज्ञम

११-असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो ।

ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कल्पगोचरा ॥ ११ ॥

। असारे सारमतयः सारे चासारदर्शिनः ।

ते सारं नाधिगच्छन्ति मिथ्यासङ्कल्पगोचराः ॥ ११ ॥)

असार को सार समझने वाले और सार को असार, मिथ्या संकल्प में पड़े वे सार को प्राप्त नहीं करते ।

१२-सारञ्च च सारतो जत्त्वा असारञ्च असारतो ।

ते सारं अधिगच्छन्ति सम्मासङ्कल्पगोचरा ॥ १२ ॥

(सारं च सारतो ज्ञात्वा, असारं च असारतः ।

ते सारं अधिगच्छन्ति सम्यक्-सङ्कल्प-गोचराः ॥ १२ ॥)

सम्यक् संकल्प से युक्त, जो असार को असार और सार को सार समझते हैं वे ही सार को प्राप्त करते हैं ।

श्रावस्ती (जेतवन)

नन्द (धेर)

१३-यथागारं दुच्छन्नं वुट्ठी समतिविज्झति ।

उच्यते = दृश्य

एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति ॥ १३ ॥

(यथागारं दुश्छन्नं वृष्टिः समतिविध्यति ।

एवं अभावितं चित्तं रागः समतिविध्यति ॥ १३ ॥

जैसे बुरी तरह छाये घर में वृष्टि का जल पैठ जाता है उसी प्रकार ध्यानाभ्यास से रहित चित्त में राग पैठ जाता है ।

१४—यथागारं सुच्छन्नं वुट्ठीं न समतिविज्झति ।

एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति ॥ १४ ॥

(यथागारं सुच्छन्नं वृष्टिर्न समतिविध्यति ।

एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविध्यति ॥ १४ ॥

जैसे अच्छी तरह छाये घर में वृष्टि का जल नहीं पैठ पाता उसी प्रकार ध्यानाभ्यास से अभ्यस्त चित्त में राग नहीं पैठ पाता ।

राजगृह (वेणुवन)

चुन्द (सकरिक)

१५—इध सोचति, पेच्च सोचति

पापकारी उभयत्थ सोचति ।

सो सोचति सो विहञ्जति

दिस्वा कम्मक्खिलिट्ठमत्तनो ॥ १५ ॥

(इह शोचति, प्रेत्य शोचति, पापकारी उभयत्र शोचति ।

स शोचति स विहन्यते दृष्ट्वा कर्मक्खिण्णमात्मनः ॥ १५ ॥)

इस लोक में शोक करता है और परलोक में जा कर भी; पापी दोनों जगह शोक करता है । वह शोक करता है, परेशान होता है, अपने मैले कर्मों को देख कर ।

भावस्ती (जेतवन)

धमिक (उपासक)

१६—इध मोदति पेच्च मोदति

कतपञ्चो यत्थ उभ मोदति ।

सो मोदति सो प्रमोदति

दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो ॥ १६ ॥

(इह मोदते, प्रेत्य मोदते, कृतपुण्य उभयत्र मोदते ।

स मोदते स प्रमोदते दृष्ट्वा कर्मविशुद्धिमात्मनः ॥१६॥)

इस लोक में मोद करता है और परलोक में जाकर भी; पुण्यशील दोनों जगह मोद करता है । वह मोद करता है, प्रमोद करता है—अपने कर्मों की विशुद्धिको देख कर ।

श्रावस्ती (जेतवन)

देवदत्त

१७-इध तप्पति, पेच्च तप्पति,

पापकारी उभयत्थ तप्पति ।

पापं मे कतन्ति तप्पति ।

भीर्यो तप्पति • दुग्गतिङ्गतो ॥ १७ ॥

(इह तप्यति, प्रेत्य तप्यति पापकारी उभयत्र तप्यति ।

पापं मे कृतमिति तप्यति, भूयस्तप्यति दुर्गतिङ्गतः ॥१७॥)

इस लोक में संताप करता है और परलोक जाकर भी संताप करता है । 'मैंने पाप किया है' सोच संताप करता है । दुर्गति को प्राप्त हो और भी अधिक संताप करता है ।

श्रावस्ती (जेतवन)

सुमना देवी

१८-इध नन्दति पेच्च नन्दति,

कतपुञ्जो उभयत्थ नन्दति ।

पुञ्जं मे कतन्ति नन्दति,

भीर्यो नन्दति सुग्गतिङ्गतोः

धम्मपद ।

(इह नन्दति प्रेत्य नन्दति कृतपुण्य उभयत्र नन्दति
पुण्य मे कृतमिति नन्दति, भूयो नन्दति सुगतिगतः ॥१८॥)

इस लोक में आनन्द करता है और परलोक जाकर भी; पुण्यशील
द्वानों जगह आनन्द करता है । 'मैंने पुण्य किया है' सोच आनन्द करता
है । सुगति को प्राप्त हो और भी अधिक आनन्द करता है ।

श्रावस्ती (केतवन) २०-१२०

दो मित्र मित्र

१९-वहंपि चे संहितं भासमानो,

न तत्करो होति नरो पमत्तो ।

गोपो व गावो गणयं परेसं

न भागवा सामञ्जस्स होति ॥ १९ ॥

(घह्मीमपि संहितां भापमाणः,

न तत्करो भवति नरः प्रमत्तः ।

गोप इव गा गणयन् परेषां,

न भागवान् भ्रामण्यस्य भवति ॥१९॥)

चाहे कोई भले ही अनेक ग्रन्थों का पाठ करने वाला हो, किन्तु
प्रसीद में पढ यदि उनके अनुकूल आचरण न करे तो वह, दूसरों की गौर्व
गिनने वाले घरवाहे की भाँति, सन्यास मत का अधिकारी नहीं होता ।

२०-अप्यपि चे संहितं भासमानो, अस्तितं

धम्मस्स होति अनुधम्मचारी ।

* रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं,

२--अप्पमादवग्गो

कौशाम्बी (वीधिवाराम)

सामावती (रानी)

२१-अप्पमादो अमत्त-पदं पमदो मच्चुनो पदं ।

अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मत्ता ॥ १ ॥

अप्रमादोऽमृतपदं प्रमादो मृत्योः पदम् ।

अप्रमत्ता न क्षियन्ते ये प्रमत्ता यथा मृताः ॥ १ ॥)

सतत-उत्साहशीलता अमृत-पद निर्वाण का साधक है, और उत्साह-हीनता मृत्यु-पद संसार-बन्ध का । उत्साहशील मृत्यु को नहीं प्राप्त होते । उत्साहहीन तो मृत ही हैं ।

२२-एतं विसेसतो अत्त्वा अप्पमादहि पण्डिता ।

अप्पमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता ॥ २ ॥

(एतं विशेषतो ज्ञात्वाऽप्रमादे पण्डिताः ।

अप्रमादे प्रमोदन्त आर्याणां गोचरे रताः ॥२॥)

यह बात अच्छी तरह जान, पण्डित लोग बुद्धों के उपदिष्ट आचरण में रत, उत्साहशील हो प्रमुदित होने हैं ।

२३-ते मायिनो साततिका निच्चं दल्ह-परक्कमा ।

फुसन्ति धीरा निब्बाणं योगक्खेमं अनुत्तरं ॥३॥

(ते ध्यायिनः साततिका नित्यं दृढपराक्रमाः ।

स्पृशन्ति धीरा निर्वाणं योगक्षेमं अनुत्तरम् ॥३॥)

सतत ध्यान का अभ्यास करनेवाले, नित्य दृढपराक्रमी धीर पुरुष परमपद योग-क्षेम निर्वाण का लाभ करते हैं ।

राजगृह (वेणुवन)

कुम्भघोसक

२४-उट्ठानवतो

सतीमतो

शुचिकम्मस्स

निसम्मकारिणो ।

सञ्जतस्स च धम्मजीविनो

अप्पमत्तस्स यसोभिवद्दति ॥४॥

(उत्थानवतः स्मृतिमतः शुचिकर्मणो निशम्य-कारिणः ।

संयतस्य च धर्मजीविनोऽप्रमत्तस्य यशोभिवर्द्धते ॥४॥)

(जो) उद्योगी, सचेत, शुचि कर्मवाला, तथा सोचकर काम करने-वाला है और संयत, धर्मानुसार जीविकावाला एवं अप्रमादी है, (उसका) यश बढ़ता है ।

राजगृह (वेणुवन)

चुल्लपन्थक (धेर)

२५-उट्ठानेनप्पमादेन सञ्जमेन दमेन च ।

दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥ ५ ॥

(उत्थानेनाऽप्रमादेन संयमेन दमेन च ।

द्वीपं कुर्यात् मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥ ५ ॥)

मेधावी (पुरुष) उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम द्वारा (अपने लिए ऐसा) द्वीप बनावे जिसे बाढ़ नहीं तुवा सके ।

चेतवन

बालनकलत्तुड (होली)

२६—प्रमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुम्भेविनो जना ।

अप्पमादञ्च मेधावो धनं सेट्ठं व रक्खति ॥ ६ ॥

(प्रमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुर्मेधसो जना ।

अप्रमादं च मेधावी धनं श्रेष्ठमिव रक्खति ॥ ६ ॥)

मूर्ख नासमझ लोग आलस्य में पड़े रहते हैं । बुद्धिमान पुरुष श्रेष्ठ धन की तरह अपनी उरसाहशीलता को सुरक्षित रखता है ।

२७—मा प्रमादमनुयुञ्जथ मा कामरतिसन्धवं ।

अप्पमत्तो हि भायन्तो पप्पोति त्रिपुलं सुखं ॥ ७ ॥

(मा प्रमादमनुयुञ्जीत मा कामरतिसंस्तवम् ।

अप्रमत्तो हि ध्यायन् प्राप्नोति त्रिपुलं सुखम् ॥ ७ ॥)

मत्त प्रमाद में फँसो, मत्त कामों में रत होओ, मत्त काम रति में लिप्त हो । प्रमाद रहित (पुरुष) ध्यान करते महान् सुख को प्राप्त होता है ।

चेतवन

उत्तुड (होली) महाकरसप (थेर)

२८—प्रमादं अप्पमादेन यदा जुदति पण्डितो ।

पब्बापासादमारुह असोको सोकिनिं पजं ।

पव्वतट्ठो व भूमट्ठे धीरो बाले अवेक्खति ॥ ८ ॥

(प्रमादमप्रमादेन यदा जुदति पण्डितः ।

प्रज्ञाप्रासादमारुह अशोकः शोकिनीं प्रजाम् ।

पर्वतस्थ इव भूमिस्थान् धीरो बालान् अवैक्षते ॥ ८ ॥)

जब पण्डित प्रमाद को अप्रामाद से हटा देता है तब वह शोक-रहित हो—जैसे कोई पर्वत पर चढ़ नीचे खड़े लोगों को देखे वैसे ही—प्रज्ञा रूपा प्रासाद पर चढ़ संसार में पड़ी जनताको शोक से आकुल देखता है ।

वेतवन

दो मित्र भिक्षु

२९—अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो ।

अवलस्सं व सीघत्सो हित्त्वा याति सुमेघसो ॥९॥

(अप्रमत्तः प्रमत्तेषु सुतेषु बहुजागरः ।

अवलाश्वमित्र शीघ्राश्वो हित्त्वा याति सुमेधाः ॥९॥)

प्रमादी लोगों में अप्रमादी, तथा (अज्ञान की नींद में) सोये लोगों में (प्रज्ञा से) जागरणशील विज्ञ उसी प्रकार आगे निकल आता है, जैसे तेज घोड़ा दुर्बल घोड़े से आगे हो जाता है ।

वैशाली (कूटागार)

महाली

३०—अप्पमादेन मघवा देवानं सेट्ठतं गतो ।

अप्पमादं पसंसन्ति पमादो गरहितो सदा ॥१०॥

(अप्रमादेन मघवा देवानां श्रेष्ठतां गतः ।

अप्रमादं प्रशंसन्ति प्रमादो गर्हितः सदा ॥१०॥)

अप्रमाद (= आलस्य रहित होने) के कारण इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना । सभी अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं । प्रमाद की सदा निन्दा होती है ।

वेतवन

कोरं भिक्षु

३१—अप्पमादरतो भिक्षु पमादे मयदस्सि वा ।

सब्बोजनं अणुं थूलं इहं अगोव गच्छति ॥ ११ ॥

(अप्रमादरतो भिक्षुः प्रमादे भयदर्शी वा ।

संयोजनं अणुं स्थूलं दहनं अग्निरिव गच्छति ॥ ११ ॥)

जो भिक्षु अप्रमाद में रत है और प्रमाद से भय खाने वाला है वह आग की भांति छोटे मोटे बंधनों को जलाते हुये आगे निकल जाता है ।

जेतवन

(निगम वासी) तिरस्त्र (धर)

३२—अप्रमादरतो भिक्षुः प्रमादे भयदर्शी वा ।

अभङ्गो परिहाणाय निव्वाणस्सेव सन्तिके ॥ १२ ॥

(अप्रमादरतो भिक्षुः प्रमादे भयदर्शी वा ।

अभङ्ग्यः परिहाणाय निर्वाणस्यैव अन्तिके ॥ १२ ॥)

जो भिक्षु अप्रमाद में रत है, प्रमाद से भय खाता है वह निर्वाणके निकट पहुँच चुका है, उसका मार्ग से च्युत होना सम्भव नहीं ।



३--चित्तवग्गो

चालिय पर्वत

मेघिय (धेर)

३३-फन्दनं चपलं चित्तं दूरक्खं दुन्निवारयं ।

उजुं करोति मेघावी उसुकारो'व तेजनं ॥ १ ॥

(स्पंदनं चपलं चित्तं दूरक्ष्यं दुर्निवार्यम् ।

ऋजुं करोति मेघावी इषुकार इव तेजनम् ॥ १ ॥)

चित्त क्षणिक है, चपल है, इसे रोक रखना कठिन है और इसे निवारण करना भी दुष्कर है । (ऐसे चित्त को) मेघावी पुरुष (यत्न-पूर्वक) एकाग्र करता है, जैसे वाण बनाने वाले वाण को ।

३४-वारिजो'व थले खित्तो ओकमोक्त उव्भतो ।

परिफन्दति'दं चित्तं मारधेय्यं पहातवे ॥ २ ॥

(वारिजं इव स्थले क्षिप्तं उदकौक्त उद्भूतम् ।

परिस्पन्दत इदं चित्तं मारधेयं प्रहातुम् ॥ २ ॥)

अपने रहने वाले जलाशय से निकाल बाहर स्थल पर फेंक दी गई मछली जिस प्रकार तड़फड़ाती है उसी प्रकार यह चित्त पाप के फन्दे से निकलने के लिए आकुल है ।

श्रावस्ती

कोई

३५-दुन्निगहस्स लहुनो यत्थकामनिपातिनो ।

चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं मुखावहं ॥ ३ ॥

युध्येत मारं प्रज्ञायुधेन
जितं च रक्षेत् अनिवेशनः स्यात् ॥ ८ ॥)

इस शरीर को घड़े की तरह (अनित्य) जान, इस चित्त को नगर की तरह (रक्षित और दृढ़) ठहरा, प्रज्ञा रूपी शस्त्र से पाप (मार) के साथ युद्ध करे । जीत लेने पर बिना आसक्ति लाये उसकी रक्षा करे ।

धावस्वी

पूतिगन्त तिस्स (घेर)

४१—अचिरं वत'यं कायो पठविं अधिसेस्सति ।

छुद्धो अपेतविञ्जाणो निरर्थं 'व कलिङ्गरं ॥ ९ ॥

(अचिरं वतायं कायः पृथिवीं अधिशेष्यते ।

जुद्धोऽपेतविज्ञानो निरर्थं इव कलिङ्गरम् ॥ ९ ॥)

अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनारहित हो निरर्थक काठ की भांति पृथिवी पर पड़ रहेगा ।

कोसल देश

मन्द (गोप)

४२—दिसो दिसं यन्तं कयिरा वैरी वा पन वैरिणं ।

मिच्छापणिहितं चित्तं पापियो नं ततो करे ॥ १० ॥

(द्विट् द्विपं यत् कुर्यात् वैरी वा पुनः वैरिणम् ।

मिथ्यापणिहितं चित्तं पापीयांस तं ततः कुर्यात् ॥ १० ॥)

जितनी (हानि) शत्रु घातु की, और वैरी वैरी की करता है, मूठे (मार्गपर) छगा चित्त उससे अधिक बुराई करता है ।

कोसल देश

संरेय्य (थेर)

४३—न तं माता पिता कयिरा अज्जे चापि च जातका ।

सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो नं ततो करे ॥ ११ ॥

(न तत् मातापितरौ कुर्यातां अन्ये चापि च ज्ञातिकाः ।

सम्यक्प्रणिहितं चित्तं श्रेयांसं तं ततः कुर्यात् ॥ ११ ॥)

जितनी (भलाई) न माता-पिता कर सकते हैं, न दूसरे भाई-बन्धु, उससे (अधिक) उसकी भलाई ठीक (मार्गपर) लगा चित्त करता है ।



४--पुष्पवग्गो

श्रावस्ती

पाँच सौ भिद्यु

४४-को इमं पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं ।

को धम्मपदं सुदेशितं कुशलो पुष्पमिव प्पचेस्सति ॥ १ ॥

(क इमां पृथिवीं विजेष्यते यमलोकं च इमं सदेवकम् ।

को धर्मपदं सुदेशितं कुशलः पुष्पमिव प्रचेष्यति ॥ १ ॥)

इस पृथ्वी को तथा देवताओं सहित इस यमलोक को कौन जीतेगा ?
कौन कुशल पुरुष पुष्प की तरह सूषदिष्ट धर्म-पदों का संग्रह करेगा ?

४५-सेखो पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इदं सदेवकं ।

सेखो धम्मपदं सुदेशितं कुशलो पुष्पमिव प्पचेस्सति ॥ २ ॥

(शैक्षः पृथिवीं विजेष्यते यमलोकं च इमं सदेवकम् ।

शैक्षो धर्मपदं सुदेशितं कुशलः पुष्पमिव प्रचेष्यति ॥ २ ॥)

शैक्ष्य इस पृथ्वी को तथा देवताओं सहित इस यमलोक को जीतेगा ।
कुशल शैक्ष्य पुष्प की तरह धर्मपदों का संग्रह करेगा ।

श्रावस्ती

मरीचि (कम्मव्याजिक थेर)

४६-फेणूपमं कायमिमं विदित्त्वा

मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो,

छेत्त्वान मारस्य पपुष्फकानि

अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥ ३ ॥

(फेनोपमं कायमिमं विदित्वा

मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानः ।

छित्त्वा मारस्य प्रपुष्पकाणि

अदर्शनं मृत्युराजस्य गच्छेत् ॥ ३ ॥)

इस शरीर को फेन की तरह तथा मृगमरीचिका की तरह (असार) जान, पाप के आकर्षणों को काट यमराज की दृष्टि के परे हो जाय ।

श्रावस्ती

विदूढम

४७—पुष्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरम् ।

सुत्तं गामं महोघो'व मच्चू आदाय गच्छति ॥ ४ ॥

(पुष्पाणि ह्येव प्रचिन्वन्तं व्यासक्तमनसं नरम् ।

सुप्तं ग्रामं महोघ इव मृत्युरादाय गच्छति ॥ ४ ॥)

पुष्प की तरह संसार की आकर्षक दिखावटों के उपभोग में पड़े, आसक्त मन वाले, मनुष्य को मृत्यु (पाप) उसी तरह ले जाता है, जैसे सोये गांव को बड़ी चाड़ ।

श्रावस्ती

पतिपूजिका

४८—पुष्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरं ।

अतित्तं येव कामेषु अन्तको कुरुते वसं ॥ ५ ॥

(पुष्पाणि ह्येव प्रचिन्वन्तं व्यासक्तमनसं नरम् ।

अतृप्तं एव कामेषु अन्तकः कुरुते वशम् ॥ ५ ॥)

पुष्प की तरह संसार की आकर्षक दिखावटों के उपभोग में पड़े, भासक मन वाले, तथा काम-भोग में जिसकी तृप्ति नहीं होती उसे यमराज अपने बस में कर लेता है ।

श्रावस्ती

(कंजूस) कौत्सिय सेठ

४९—यथापि भमरो पुष्पं वण्णगन्धं अहेठयं ।

पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे ॥ ६ ॥

(यथापि भ्रमरः पुष्पं घर्णगन्धं अघतन् ।

पलायते रसमादाय एवं ग्रामे मुनिश्चरेत् ॥ ६ ॥)

जैसे भ्रमर पुष्प के बर्ण और गन्ध को बिना हानि पहुँचाये, रस को लेकर चल देता है, वैसे ही मुनि ग्राम में भिच्छाटन करे ।

श्रावस्ती

पाठिक (आजीवक साधु)

५०—न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं ।

अत्तनो'व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ॥ ७ ॥

(न परेपां विलोमानि न परेपां कृताकृतम् ।

आत्मन एव अवेक्षेत कृतानि अकृतानि च ॥ ७ ॥)

न तो दूसरों के दोष और न दूसरों के किये तथा न किये की आलोचना करे । अपने स्वयं क्या किया है और क्या नहीं इसीका चिन्तन करे ।

श्रावस्ती

द्वत्तपाथि (उपासक)

५१—यथापि रुचिरं पुष्पं वण्णवन्तं अगन्धकं ।

एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो ॥ ८ ॥

(यथापि रुचिरं पुष्पं वर्णवद् अगन्धकम् ।

एवं सुभासिता वाक् अफला भवति अकुर्वतः ॥ ८ ॥)

जैसे रुचिर और वर्णयुक्त (किन्तु) गंधरहित फूल है, वैसे ही (कथनानुसार) भाचरण न करनेवाले की सुभाषित वाणी भी निष्फल है।

५२—यथापि रुचिरं पुष्पं वर्णवन्तं सगन्धकं ।

एवं सुभासिता वाचा सफला होति कुर्वतो ॥ ९ ॥

(यथापि रुचिरं पुष्पं वर्णवत् सगन्धकम् ।

एवं सुभाषिता वाक् सफला भवति कुर्वतः ॥ ९ ॥)

जैसे रुचिर और वर्णयुक्त गन्धसहित फूल होता है, वैसे ही (वचन के अनुसार काम) करनेवालेकी सुभाषित वाणी सफल होती है ।

श्रवस्ती पूर्वाराम

विशाखा (व्यासिका)

५३—यथापि पुष्परासिम्हा कयिरा मालागुणे वहू ।

एवं जातेन मच्चेन कर्त्तव्यं कुशलं बहुं ॥ १० ॥

(यथापि पुष्पराशेः कुर्यात् मालागुणान् वहून् ।

एवं जातेन मर्त्येन कर्त्तव्यं कुशलं बहुं ॥ १० ॥)

जैसे पुष्पों की राशि से कोई अनेक माला की लड़ियां बनावे, वैसे ही जन्म ले कर मनुष्य को अनेक पुण्य करने चाहिए ।

श्रावस्ती

भानन्द (धेर)

५४—न पुष्पगन्धो पटिवातमेति

न चन्दनं तगरमल्लिका वा ।

सतञ्च गन्धो पटिवातमेति

सञ्चा दिसा सप्पुरिसो पवाति ॥ ११ ॥

(न पुष्पगन्धः प्रतिघातमेति
 न चन्दनं तगर-मल्लिके वा ।
 सतां च गन्धः प्रतिघातमेति
 सर्वा दिशः सत्पुरुषः प्रवाति ॥ ११ ॥)

पुष्प, चन्दन, तगर या चमेली किसी की भी सुगन्धि हवाके उलटे नहीं जाती । किंतु सन्तों का यश हवा के उलटे भी फैलता है । सत्पुरुष सभी दिशाओं को व्याप्त कर देता है ।

५५-चन्दन तगर वापि उत्पल अथ वस्सिकी ।
 एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ॥ १२ ॥
 (चन्दनं तगरं वापि उत्पलं अथ वार्पिकी ।
 एतेषां गन्धजातानां शीलगन्धोऽनुत्तरः ॥ १२ ॥)

चन्दन या तगर, कमल या जूही, इन सभी (की) सुगन्धों से सदाचार की सुगन्ध उत्तम है ।

राजगृह (वेणुवन)

महाकस्तप

५६-अल्पमत्तो अय गन्धो या'यं तगरचन्दनी ।
 यो च सीलवत्त गन्धो वाति देवेषु उत्तमो ॥ १३ ॥
 (अल्पमात्रोऽयं गन्धो योऽयं तगरचन्दनी ।
 यश्च शीलवत्तां गन्धो वाति देवेषु उत्तमः ॥ १३ ॥)

तगर और चन्दन की जो यह गंध फैलती है, वह अल्पमात्र है, और जो यह सदाचारियों की गंध है, (वह) उत्तम (गंध) देवताओं में फैलती है ।

राजगृह (वेणुवन)

गोधिक (धेर)

५७-तेसं सम्पन्नसीलानं अप्पमादविहारिनं ।

सम्मदञ्जाविमुत्तानं मारो मग्गां न विन्दति ॥ १४ ॥

(तेषां सम्पन्नशीलानां अप्रमाद-विहारिणाम् ।

सम्यग्-ज्ञा-विमुक्तानां मारो मार्गं न विन्दति ॥ १४ ॥)

(जो) वे सदाचारी निरालस हो विहरनेवाले; यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त (हो गये हैं,) (उनके) मार्गको मार नहीं पकड़ सकता ।

जेतवन

गरहादिन्न

५८-यथा संकारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे ।

पडमं तत्थ जायेथ सुचिगन्धं मनोरमं ॥ १५ ॥

(यथा संकारधानं उज्झिते महापथे ।

पद्मं तत्र जायेत शुचिगन्धं मनोरमम् ॥ १५ ॥)

५९-एवं संकारभूतेसु अन्धभूते पुथुज्जने ।

अतिरोचति पञ्जाय सम्मासम्बुद्धसावको ॥ १६ ॥

(एवं संकारभूते अन्धभूते पृथग्जने ।

अतिरोचते प्रज्ञया सम्यक्-संबुद्ध-आचकः ॥ १६ ॥)

बड़ी सड़क के किनारे फेंके कूड़े के ढेर पर जिस तरह कोई सुगंध सुन्दर पद्म उत्पन्न हो जाय, उसी तरह कूड़े के समान क्षुद्र अज्ञ संसारसक्त जनता में सम्यक्-संबुद्ध का शिष्य अपनी प्रज्ञा से अत्यधिक शोभित होता है ।

५—बालवर्गो

भावस्ती (वेतवन)

दरिद्र सेवक

६०—दीघा जागरतो रत्ति दीघं सन्तस्सं योजनं ।

दीघो बालानं संसारो सद्धम्मं अविजानतं ॥ १ ॥

(दीर्घां जाग्रतो रात्रिः दीर्घं भ्रान्तस्य योजनम् ।

दीर्घो बालानां संसारः सद्धर्मं अविजानताम् ॥ १ ॥)

जागने वाले को रात लम्बी मालूम होती है । थके हुए के लिए एक योजन बहुत लम्बा होता है । सद्धर्म को न जानने वाले अज्ञ पुरुष के भावागमन का चक्र (=संसार) लम्बा होता है ।

राजगृह

सार्द्धविहारी (=शिष्य)

६१—चरञ्चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो ।

एकचरियं दल्हं कयिरा नत्थि बाले सहायता ॥ २ ॥

(चरन् चेत् नाधिगच्छेत् श्रेयांसं सदृशं आत्मनः ।

एकचर्यां ददं कुर्यात् नास्ति बाले सहायता ॥ २ ॥)

विषरण करते यदि अपने से श्रेष्ठ या अपने समान कोई व्यक्ति न मिले तो दृढ़ता पूर्वक अकेला ही रहे । मूर्ख से मित्रता अच्छी नहीं ।

भारस्ती

भानन्द (सेठ)

६२—पुत्ता मत्थि धनम्मत्थि इति बालो विहञ्जति ।

अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुत्तो पुत्तो कुत्तो धनं ॥ ३ ॥

(पुत्रा मे सन्ति धनं मे ऽस्ति इति बालो विहन्यते ।

आत्मा हि आत्मनो नास्ति कुतः पुत्रः कुतो धनम् ॥ ३ ॥)

मेरा पुत्र है, मेरा धन है—इस प्रकार मूर्ख परेशान होता है ।
मनुष्य अपना आप नहीं है; पुत्र और धन उसके कहीं तक होंगे !

जेतवन

गिरहकट चोर

६३—यो बालो मञ्जती बाल्यं पण्डितो चापि तेन सो ।

बालो च पण्डितमानी, स वै बालोति वुच्चति ॥ ४ ॥

(यो बालो मन्यते बाल्यं पण्डितश्चापि तेन स ।

बालश्च पण्डितमानी स वै बाल इत्युच्यते ॥ ४ ॥)

जो मूर्ख अपनी मूर्खता को समझता है इस कारण वह पण्डित है ।
जो मूर्ख हो अपने को पण्डित समझता है वही यथार्थ में मूर्ख है ।

श्रावस्ती (जेतवन)

उदायो (धेर)

६४—यावज्जीवमपि चे बालो पण्डितं पयिरुपासति ।

न सो धर्मं विजानाति दब्धी सूपरसं यथा ॥ ५ ॥

यावज्जीवमपि चेद् बालः पण्डितं पर्युपास्ते ।

न स धर्मं विजानाति दूर्वां सूपरसं यथा ॥ ५ ॥)

मूर्ख यदि जन्म भर पण्डित के साथ रहे तो भी धर्म का बोध नहीं करता, ठीक वैसे ही जैसे कलड़ी तरकारी के रसास्वाद का ।

श्रावस्ती (जेतवन)

भद्रवर्गीय (भिन्नलोग)

६५—मुहुत्तमपि चे विञ्जू पण्डितं पयिरुपासति ।

स्निपं धर्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा ॥ ६ ॥

(नहि पापं कृतं कर्म सद्यः क्षीरमिव मुंचति ।

दहनं बालमन्वेति भस्माच्छन्न इव पावकः ॥ १२ ॥)

किया गया पाप शीघ्र ही श्रपना फल नहीं लाता । जैसे, ताजा दूध शीघ्र ही जम नहीं जाता । राख से ढकी आग की तरह वह (पाप कर्म) जलाता हुआ मूर्ख का अनुगमन करता है ।

राजगृह (वेणुवन)

सङ्कट (पेश)

७२-यावदेव अनर्थाय जतं बालस्स जायति ।

हन्ति बालस्स सुक्कंसं सुद्धमस्स विपातयं ॥ १३ ॥

(यावदेव अनर्थाय जतं बालस्य जायते ।

हन्ति बालस्य शुक्लांशं मूर्धानमस्य विपातयन् ॥ १३ ॥)

मूर्ख का सारा ज्ञान उसी के अनर्थ के लिए होता है । वह मूर्ख को अच्छाई का नाश करता है, और उसके शिर को नीचा गिराता है ।

नेतवन

सुभम्म (धेर)

७३-असतं भावनमिच्छेय्य पुरेक्खारद्य भिक्खुसु ।

आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च ॥ १४ ॥

(असद् भावनमिच्छेत् पुरस्कारं च भिक्षुषु ।

आवासेषु चैश्वर्यं पूजा परकुलेषु च ॥ १४ ॥)

७४-ममेव कतमब्जन्तु गिही पब्बजिता उभो ।

ममेवातिवसा अस्तू किञ्चाकिञ्चेसु किस्मिचि

इति बालस्स सङ्गप्पो इच्छा मानो च बह्दति ॥ १५ ॥

(ममैव कृतं मन्येतां गृहि-प्रव्रजिताबुधौ ।
ममैवातिघशाः स्यातां कृत्याकृत्येषु कस्मिंश्चित् ।
इति बालस्य संकल्प इच्छा मानश्च वर्द्धते ॥ १५ ॥)

भिक्षुओं के बीच अगुआ होना, मठों का अधिपति बनना, गृहस्थ परिवारों में पूजित होना, गृही और प्रव्रजित दोनों मेरा ही किया मानें, सभी प्रकार के काम में वे मेरे ही आधीन रहें—ऐसी अनुचित इच्छा करता है । इस प्रकार मूर्ख के संकल्प, और अहंकार बढ़ते हैं ।

श्रावस्ती (नेतवन)

(बनवासी) तिस्र (धेर)

७५—अञ्जा हि लाभूपनिसा अञ्जा निव्वान-गामिनी ।

एवमेतं अभिञ्जाय भिक्षु बुद्धस्स सावको ॥

सत्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूह्ये ॥ १६ ॥

(अन्या हि लाभोपनिपद् अन्या निर्वाणगामिनी ।

एवमेतद् अभिञ्जाय भिक्षुर्वुद्धस्य श्रावकः ।

सत्कारं नाभिनन्देत् विवेकमनुवृंहयेत् ॥ १६ ॥)

अनुवाद—लाभ का रास्ता दूसरा है, और निर्वाण को जे जानेवाला दूसरा—इस प्रकार इसे जानकर बुद्ध का अनुगामी भिक्षु सत्कार का अभिनन्दन न करे, और विवेक (= एकान्तचर्या) को बढ़ावे ।

बालवर्ग समाप्त

६--परिहृत वर्गो

जैतवन

राध (धेर)

७६-निधीनं व पवत्तारं यं पस्ते वज्ज-दस्सिनं ।
निगग्घवादिं भेधाविं तादिसं पण्डितं भजे ।
तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो ॥ १ ॥

(निधीनामिध प्रवत्तारं यं पश्येत् वज्ज्यदस्शिनम् ।
निगृह्यवादिनं भेधाविनं, तादृशं पंडितं भजेत् ।
तादृशं भजमानस्य श्रेयो भवति न पापीयः ॥ १ ॥)

दोष दिखा देने वाले को वैसा ही (प्रिय) समझे जैसा वह जो गड़े खजानों का भेद बताने वाला हो । सयत करके उपदेश करने वाले जैसे मेधावी परिहृत के साथ रहे । जैसे (सत्पुरुष) के साथ रहने से कल्याण ही होता है, बुरा नहीं ।

जैतवन

अस्सजी, पुनव्वसू

७७-ओवदेय्यानुसासेय्य असब्भा च निवारये ।
सतं हि सो पियो होति असतं होति अप्पियो ॥ २ ॥

(अवधदेवमुशिष्याद् असभ्याच्च निवारयेत् ।
सतां हि स प्रियो भवति असतां भवत्यप्रियः ॥ २ ॥)

जो सदुपदेश दे, सुमार्ग दिखावे तथा कुमार्ग से निवारण करे वह सज्जनों को प्रिय होता है, किंतु दुर्जनों को अप्रिय ।

जेतवन

द्वय (धेर)

७८-न भजे पापके मित्ते न भजे पुरिसाधमे ।

भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पुरिसुत्तमे ॥ ३ ॥ ११११

(न भजेत् पापानि मित्राणि न भजेत् पुरुषाधमान् ।

भजेत् मित्राणि कल्याणानि भजेत् पुरुषोत्तमान् ॥३॥)

बुरे मित्रों के साथ न रहे । अधम पुरुषों का संग न करे । सन्मित्रके साथ रहे । उत्तम पुरुषों का संग करे ।

जेतवन

महाकप्पिन (धेर)

७९-धम्मपीती सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा ।

अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो ॥ ४ ॥

(धर्मपीतीः सुखं शेते विप्रसन्नेन चेतसा ।

आर्यप्रवेदिते धर्मे सदा रमते पंडितः ॥ ४ ॥)

धर्म में आनन्द मानने वाला अत्यन्त श्रद्धायुक्त चित्त से सुख पूर्वक विहार करता है । पण्डितजन बुद्ध के उपदिष्ट धर्म में सदा रत रहता है ।

जेतवन

पण्डित साम्भेर

८०-उदकं हि नयन्ति नेत्तिका

उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।

(१५५५)

दारुं

नमयन्ति

तच्छका

७५६३

अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥ ५ ॥

(उदकं हि नयन्ति नेत्तिका इषुकारा नमयन्ति तेजनम् ।

दारु नमयन्ति तक्षका आत्मनं दमयन्ति पण्डिताः ॥५॥)

नहर वाले पानी को ले जाते हैं, वाण बनाने वाले वाण को ठीक करते हैं, बड़ई लकड़ी को ठीक करते हैं; और पंडित (जन) अपने आपका दमन करते हैं ।

जेतवन

भदिय (धेर)

८१—सेलो यथा एकघनो वातेन न समोरति ।

एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥ ६ ॥

(शैलो यथैकघनो वातेन न समीर्यते ।

एवं निन्दाप्रशंसासु न समीर्यन्ते पण्डिताः ॥ ६ ॥)

जैसे ठीस पहाड़ हवामे कयायमान नहीं होना; वैसे ही पंडित निन्दा और प्रशंसासे विचलित नहीं होते ।

जेतवन

काम-माता

८२—यथापि रहदो गम्भीरो विष्पसन्नो अनाविलो ।

एवं धम्मानी सुत्थान विष्पसीदन्ति पण्डिता ॥ ७ ॥

(यथापि हृदो गम्भीरो विप्रसन्नोऽनाविलः ।

एवं धर्मान् ध्रुत्वा विप्रसीदन्ति पण्डिताः ॥ ७ ॥)

जैसा गम्भीर स्वच्छ निर्मल जलाशय हो, वैसे ही पण्डित लोग धर्म को मुन कर शुद्ध हो जाते हैं ।

जेतवन

पंच धी भिद्यु

८३—सवक्त्य वे सप्पुरिसा वन्नन्ति

न कामकामा लपयन्ति सन्तो ।

सुखेन फुट्टा अथवा दुखेन

न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति ॥ ८ ॥

(सर्वत्र वै सत्पुरुषा ब्रजन्ति न कामकामा लपन्ति सन्तः ।
सुखेन स्पृष्टा अथवा दुःखेन नोच्चावचं पण्डिता दर्शयन्ति ॥८॥)

सत्पुरुष सभी जगह जाते हैं किंतु वे अपनी मतलब की बातें नहीं करते। सुख हो या दुःख, पण्डित लोग अपने में विकार नहीं प्रदर्शन करते।

८४-न अत्तहेतु न परस्स हेतु

न पुत्तमिच्छे न धनं न रद्धं । २१७२

न इच्छेय्य अधममेन समिद्धिमत्तनो

स शीलवान् पञ्जवा धम्मिको सिया ॥ ९ ॥

(नात्महेतोः न परस्य हेतोः

न पुत्रमिच्छेत् न धनं न राष्ट्रम् ।

नेच्छेद् अधर्मेण समृद्धिमात्मनः

स शीलवान् प्रज्ञावान् धार्मिकः स्यात् ॥ ९ ॥)

न अपने लिये और न दूसरे के लिये, न पुत्र की इच्छा करे, न धन की और न राज्य की। अधर्म से अपनी उन्नति की इच्छा न करे। शीलवान्, प्रज्ञावान् और धार्मिक बने।

नेतयन

धर्मश्रवण

८५-अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो ।

अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावति ॥ १० ॥

(अल्पकारते मनुष्येषु ये जनाः पारगामिनः ।

अथेमा इतराः प्रजाः तीरमेवानुधावति ॥ १० ॥)

मनुष्यों में ऐसे बहुत थोड़े हैं जो यथार्थ में उस पार जाना चाहते हैं । अधिक तो ऐसे हैं जो किनारे ही किनारे दौड़ते हैं ।

८६-ये च खो सम्मदवखाते धम्मे धम्मानुवर्तिनो ।

ते जनाः पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्यं सुदुत्तरम् ॥ ११ ॥

(ये च खलु सम्यगाख्याते धर्मे धर्मानुवर्तिनः ।

ते जनाः पारमेप्यन्ति मृत्युधेयं सुदुस्तरम् ॥ ११ ॥)

जो अच्छी तरह उपदिष्ट धर्म में धर्मानुचरण करते हैं वे ही दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार करेंगे ।

वेतवन

पाँच सौ नवागव भिक्षु

८७-कण्हं धम्मं विप्रहाय सुक्कं भावेत्थ पण्डितो ।

ओका अनोका आगम्य विवेके यत्थ दूरमं ॥ १२ ॥

(कृष्णं धर्मं विप्रहाय शुक्लं भवयेत् पण्डितः ।

ओकात् अनोकं आगम्य विवेकं यत्र दूरमम् ॥ १२ ॥)

८८-तत्राभिरतिमिच्छेय्य हिच्चा कामे अकिञ्चनो ।

परियोदपेय्य अत्तान चित्तवलेसेहि पण्डितो ॥ १३ ॥

(तत्राभिरतिमिच्छेत् हिच्चा कामान् अकिञ्चनः ।

पर्यदापयेत् आत्मानं चित्तवलेशैः पण्डितः ॥ १३ ॥)

परिदरत तुरी यात को छोड़ भण्डी का भण्डाल करे । घर से बेघर हो पश्चात् स्थान में रहे जहाँ साधारण लोगों का मन नहीं लगता ।

कामनाओं को छोड़ अकिञ्चन हो परिडतजन अपने को चित्त के मलों से शुद्ध करे ।

८९—येसं सम्बोधि-अङ्गेषु सम्मा चित्तं सुभावितं ।

आदान-पटिनिस्सग्गे अनुपादाय ये रता ।

खीण सवा जुतीमन्तो ते लोके परिनिव्वुता ॥ १४ ॥

(येषां सम्बोध्यंगेषु सम्यक् चित्तं सुभावितम् ।

आदानप्रतिनिःसर्गं अनुपादाय ये रताः ।

क्षीणास्त्रवा ज्योतिष्प्रन्तस्ते लोके परिनिवृत्ताः ॥१४॥)

जिनका चित्त सम्बोध्यङ्गों में अच्छी तरह अभ्यस्त हो गया है, जो अनासक्त हो परिग्रह के त्याग में रत हैं, क्षीणश्रव द्युतिमान हैं, वे ही संसार में निर्वाण पा चुके हैं ।

७—अरहन्तवग्गो

राजगृह (जीवकका आश्रम)

जीवक

९०—गतद्विनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।

सब्बगन्थप्पहीणस्य परिहाहो न विज्जति ॥ १ ॥

(गताध्वानो विशोकस्य विप्रमुक्तस्य सर्वथा ।

सर्वग्रन्थप्रहीणस्य परिहाहो न विद्यते ॥ १ ॥)

जिसने मार्ग तय कर लिया है, शोकरहित सर्वथा विमुक्त हो गया है, जिसकी सभी ग्रन्थियां प्रहीण हो गई हैं उसे कोई सन्ताप नहीं ।

राजगृह (वेणुवन)

महाकस्सप

९१—उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।

हंसा 'व पल्लं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते ॥ २ ॥

(उद्युंजते स्मृतिमन्तो न निकेते रमन्ते ते ।

हंसा इव पल्लं हित्वा ओकमोकं जहति ते ॥ २ ॥)

स्मृतिमान् हो उद्योग करते हैं, गृहस्थ जीवन में वे रमण नहीं करते । हंस जैसे चुद्र जलाशय को छोड़ कर उड़ जाता है, वैसे वे सभी गृहवास को छोड़ देते हैं ।

जेतवन

वेलाड्ढि सीस

९२—येसं सन्निचयो नत्थि ये परिब्जातभोजना ।

सुब्बतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।

आकासे 'व सकुन्तानं गति तेसं दुरत्तया ॥ ३ ॥

(येषां सन्निचयो नास्ति वे परिज्ञातभोजनाः ।
शून्यतोऽनिमित्तश्च विमोक्षो यस्य गोचरः ।
आकाश इव शकुन्तानां गतिः तेषां दुरन्वया ॥ ३ ॥)

जिन्हें कोई संग्रह नहीं, जो भोजन नें संयत हैं, शून्य और अनिमित्त स्वरूप निर्वाण पर जो समाधित्य हैं उनकी गति, आकाश के पत्ती की गति की भांति, अज्ञेय है ।

राजगृह (वेणुवन)

अनुरुद्ध (धेर)

९३—यस्सा'सवा परिक्लीणा आहारे च अनिस्सितो ।
सुञ्जतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।
आकासे' व सकुन्तानं पदं तस्स दुरन्नयं ॥ ४ ॥

(यस्यास्रवाः परिक्लीणा आहारे च अनिस्सृतः ।
शून्यतोऽनिमित्तश्च विमोक्षो यस्य गोचरः ।
आकाश इव शकुन्तानां पदं तस्य दुरन्वयम् ॥ ४ ॥)

जिसके आश्रव क्लीण हो गये हैं, आहार में जिसे आसक्ति नहीं, शून्य और अनिमित्त स्वरूप निर्वाण पर जो समाधिस्थ है उसकी स्थिति, आकाश के पत्ती की भांति, अज्ञेय है ।

श्रावस्ती (पूर्वाराभ)

महाकच्चायन

९४—यस्सिन्द्रियाणि समथं गतानि,
अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता ।
पहीनमानस्स अनासवस्स.
देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो ॥ ५

(यस्येन्द्रियाणि शमतां गतानि
अश्वा यथा सारथिना सुदान्ताः ।
प्रहीणमानस्य अनास्रवस्य देवा
अपि तस्य स्पृहयन्ति तादृशः ॥ ५ ॥)

सारथी के द्वारा दमन कर लिए गए अश्व के समान जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हो गई हैं, वैसे अहंकार रहित अनाश्रव सन्त की स्पृहा देवता लोग भी करते हैं ।

जेतवन

सारिपुत्त (धेर)

९५-पृथ्वीसमो नो विरुज्झति
इन्द्रखीलपमो तादि सुव्वतो ।
रहदो 'व अपेतकदमो
संसारा न भवन्ति तादिनो ॥ ६ ॥

पृथिवीसमो न विरुध्यते इन्द्रकीलोऽमस्तादृक् सुव्रतः ।
हृद इवापेतकदमः संसारा न भवन्ति तादृश ॥ ६ ॥)

वैसा सुव्रत, इन्द्रकील के समान (हृद), तथा पृथ्वी के समान अकम्प्य होता है । वह पक-रहित जलाशय के समान स्वच्छ है । वह संसार की मन्थियों में बद्ध नहीं होता ।

जेतवन

कौसग्भिभासित विस्स धेर)

९६-सन्तं अस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च ।
सम्मदब्जाविमुत्तस्स उपसन्तस्स तादिनो ॥ ७ ॥

(शान्तं तस्य मनो भवति शान्ता वाक् च कर्म च ।
साम्यगाहाविमुक्तस्य उपशान्तस्य तादृश ॥ ७ ॥)

यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हुए उस उपशान्त (अर्हत् पुरुष) का मन शान्त होता है, वाणी और कर्म शान्त होते हैं ।

जेतवन

सापुत्र (धेर)

९७—अस्सद्धो अकृतञ्जू च संविच्छेदो च यो नरो ।

हतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसो ॥ ८ ॥

(अश्रद्धोऽकृतज्ञश्च सन्धिच्छेदश्च यो नरः ।

हतावकाशो वान्ताशः स वै उत्तमपुरुषः ॥ ८ ॥)

जो (अन्य) विश्वास से रहित है, अकृत निर्वाण का ज्ञानी है, पुनर्जन्म होना जिसे सम्भव नहीं, जिसने सारी नृणा का त्याग कर दिया है, वही उत्तम पुरुष है । ❀

जेतवन

(खदिरवनी) खेत (धेर)

९८—गामे वा यदि वारञ्जे निम्ने वा यदि वा थले ।

यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामण्यकं ॥ ९ ॥

(ग्रामे वा यदि वाऽऽरण्ये निम्ने वा यदि वा स्थले ।

यत्रारहन्तो विहरन्ति सा भूमि रमणीया ॥ ९ ॥)

गाँव में या जंगल में, निम्न या ऊँचे स्थल में जहाँ कहीं अर्हत् लोग विहार करते हैं, वही रमणीय भूमि है ।

जेतवन

भारण्यक मिद्ध

९९—रमणीयानि अरञ्जानि यत्थ न रमते जनो ।

वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥ १० ॥

(रमणीयान्यारण्यानि यत्र न रमते जनः ।
 वीतरागा रंस्यन्ते न ते कामगवेदिणः ॥ १० ॥)

रमणीय वन, जहाँ (साधारण) जन रमण नहीं करते, वहाँ
 काम (भोगों) के पीछे न भटकने वाले वीतराग रमण करेंगे ।

८—सहस्सवर्गो

वेणुवन-

तन्वदाठिक (चोरघातक)

१००—सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता ।

एकं अत्थपदं सेय्यो यं सुत्त्वा उपसम्मति ॥ १ ॥

(सहस्समपि चेद् वाचः अनर्थपदसंहिताः ।

एकं मर्थपदं श्रेयो यच्छुत्त्वोपशाम्यति ॥ १ ॥)

व्यर्थ के पदों से युक्त सहस्रों वाक्यों से भी (वह) सार्थक एक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शान्ति होती है ।

जेतवन

दारुचीरिषि (धेर)

१०१—सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसंहिता ।

एकं गाथापदं सेय्यो यं सुत्त्वा उपसम्मति ॥ २ ॥

(सहस्समपि चेद् गाथा अनर्थपदसंहिताः ।

एकं गाथापदं श्रेयो यच्छुत्त्वोपशाम्यति ॥ २ ॥)

व्यर्थ के पदों से युक्त हजार गाथाओं से भी एक गाथापद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर० ।

जेतवन

कुण्डलकेसी (धेर)

१०२—यो च गाथासतं भासे अनत्थपदसंहिता ।

एकं धम्मपदं सेय्यो यं सुत्त्वा उपसम्मति ॥ ३ ॥

(यश्च गाथाशतं भाषेतानर्थपदसंहितम् ।

एकं धर्मपदं श्रेयो यच्छ्रुत्वोपशाम्यति ॥ ३ ॥)

जो अनर्थपदों से युक्त सौ गाथायें भी पढ़े, उससे कहीं अच्छा एक धर्मपद है जिसे सुनकर उपशान्त हो जाता है ।

१०३—यो सहस्रं सहस्रेण सङ्ग्रामे मानुसे जिते ।

एकं च जेय्यमानं स वै सङ्ग्रामजुत्तमो ॥ ४ ॥

(यः सहस्रं सहस्रेण संग्रामे मानुषान् जयेत् ।

एकं च जयेद् आत्मानं स वै संग्रामजिदुत्तमः ॥ ४ ॥)

जो कोई संग्राम में हजारों मनुष्यों को जीत ले, उससे कहीं बढ़ कर संग्राम-विजयी वह है जो एक अपने स्वयं को जीत ले ।

जैश्वन

अनर्थ-पुच्छक भाषण

१०४—अत्ता ह वै जितं सेरयो या चायं इतरा पजा ।

अतदन्तस्स पोसस्स निच्चं सञ्जतचारिणो ॥ ५ ॥

(आत्मा ह वै जितः श्रेयान् या चैयमितराः प्रजाः ।

वान्तात्मनः पुरुषस्य नित्यं संयतचारिणः ॥ ५ ॥)

१०५—नेव देवो न गन्धर्वो न मारो सह ब्रह्मणा ।

जितं अपजितं कयिरा तथा रूपस्स जन्तुनो ॥ ६ ॥

(नैव देवो न गन्धर्वो न मारुः सह ब्रह्मणा ।

जितं अपजितं कुर्यात् तथा रूपस्य जन्तोः ॥ ६ ॥)

इन भय्य प्रजाओं के जीतने की भ्रष्टा चरने की जीतना भेद है । अपने को दमन करनेवाले, नित्य भरने को संयम करनेवाले, जो पुरुष हैं

उनके जीते को, न देवता, न गन्धर्व, न ब्रह्मा सहित मार, बेजीता कर सकते हैं ।

वेणुवन

सारिपुत्रके मामा

१०६—मासे मासे सहस्तेन यो यजेथ सतं समं ।

एकञ्च भावित्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।

सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥ ७ ॥

(मासे मासे सहस्तेन यो यजेत शतं समान् ।

एकं च भावितात्मानं मुहूर्तमपि पूजयेत् ।

सैव पूजना श्रेयसी यच्चेद् वर्षशतं हुतम् ॥ ७ ॥)

सहस्र (दक्षिणा यज्ञ) से जो महीने महीने सौ वर्ष तक यजन करे, और यदि परिशुद्ध मनवाले एक (पुरुष) को एक मुहूर्त ही पूजे ; तो सौ वर्ष के हवन से यह पूजा ही श्रेष्ठ है ।

वेणुवन

सारिपुत्रका भांजा

१०७—यो च वस्ससतं जन्तु अग्निं परिचरे वने ।

एकं च भावित्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।

सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥ ८ ॥

(यश्च वर्षशतं जन्तुरग्निं परिचरेद् वने ।

एकं च भावितात्मानं मुहूर्तमपि पूजयेत् ।

सैव पूजना श्रेयसी यच्चेद् वर्षशतं हुतम् ॥ ८ ॥)

यदि प्राणी सौ वर्ष तक वन में अग्निपरिचरण (= अग्निहोत्र) करे, और यदि० ।

वेणुवन

सारिपुत्तका भित्र ब्राह्मण

१०८-यं किंचि विट्ठं च हुतं च लोके,

संवच्छरं यजेथ पुब्जपेक्खो ।

सत्त्वमपि तं न चतुभागमेति,

अभिवादाना उज्जुगतेसु सेय्यो ॥ ९ ॥

(यत् किंचिद् इष्टं च हुतं च लोके,

संवत्सरं यजेत पुण्यापेक्षः ।

सर्वमपि तत् न चतुर्भागमेति,

अभिवादाना ऋजुगतेषु श्रेयसी ॥ ९ ॥)

पुण्य की अभिलाषा से यदि वर्ष भर लोक के सभी यज्ञ और हवन करे तो भी ऋजुभूत सन्त को किए हुए प्रणाम का चौथा हिस्सा फल भी नहीं प्राप्त होता है ।

परम्यकुटी

दीनाथ कुमार

१०९-अभिवादनसीलिसस निच्चं बद्धापचायिनो ।

चत्तारो धम्मा वृद्धन्ति आयु वण्णो सुखं वलं ॥ १० ॥

(अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धापचायिनः ।

चत्वारो धर्मा वर्धन्ते आयुर्वर्णः सुखं वलम् ॥ १० ॥)

जो अभिवादन शील है, जो सदा वृद्धों को सेवा करनेवाला है, उसकी चार बातें (= धर्म) बढ़ती हैं—आयु, वर्ण, सुख और बल ।

वेणुवन

६६४ (= ६६४) सामसेर

११०-यो च वस्तसतं जीपे दुस्सीलो जसमादितो ।

एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तरस भ्रायिनो ॥ ११ ॥

(यश्च वर्षशतं जीवेद् अपश्यन् उदयव्ययम् ।
एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यत उदयव्ययम् ॥ १८ ॥)

(संसार में वस्तुओं के) उत्पत्ति और विनाश का विना मनन किए सौ वर्ष के जीवन से, उत्पत्ति और विनाश के मनन शील के जीवन का एक दिन श्रेष्ठ है ।

जैतवन

कितागोमती

११४-यो च वत्ससतं जीवे अपत्सं अमतं पद ।
एकाहं जीवितं सेव्यो पत्सतो अमतं पदं ॥ १५ ॥

(यश्च वर्षशतं जीवेद् अपश्यन् अमृतं पदम् ।
एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यतोऽमृतं पदम् ॥ १५ ॥)

अमृतपद (= दुःखनिर्वाण) को न रयाल किए सौ वर्ष के जीवन से, अमृतपद को देने वाले जीवन का एक दिन श्रेष्ठ है ।

जैतवन

बहुचिका (बेरी)

११५-यो च वत्ससत जीवे अपत्सं धम्ममुत्तमं ।
एकाहं जीवितं सेव्यो पत्सतो धम्ममुत्तमं ॥ १६ ॥

(यश्च वर्षशतं जीवेद् अपश्यन् धर्ममुत्तमम् ।
एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यतो धर्ममुत्तमम् ॥ १६ ॥)

उत्तम धर्म को विना जाने सौ वर्ष के जीवन से, उत्तम धर्म के देनेवाले के जीवन का एक दिन श्रेष्ठ है ।

६--पापवग्गो

जेतवन

(चूल) एकसाटक (ब्राह्मण)

११६--अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये ।

दुग्धं हि करोतो पुब्बं पापस्मिं रमते मनो ॥ १ ॥

(अभित्थरेथ कल्याणे पापात् चित्तं निवारयेत् ।

तन्निद्रितं हि कुर्वतः पुण्यं पापे रमते मनः ॥ १ ॥)

पुण्य करने में शीघ्रता करे, पापसे चित्तको हटावे । पुण्य कार्य में शिथिलता करने वाले का मन पाप में लग जाता है ।

जेतवन

सेव्यसक (धेर)

११७--पापञ्चे पुरिसो कयिरा न तं कयिरा पुनप्पुनं ।

न तस्मिं छन्दं कयिराथ दुक्खो पापस्स उच्चयो ॥ २ ॥

(पापं चेत् पुरुषः कुर्यात् न तत् कुर्यात् पुनः पुनः ।

न तस्मिं छन्दं कुर्यात्, दुःखः पापस्य उच्चयः ॥ २ ॥)

मनुष्य यदि पाप कर दे तो उसे वार २ न करे । उसमें इच्छा न बढ़ावे । पापका संचय दुःख का कारण होता है ।

जेतवन

लाजदेवकी कन्या

११८--पुब्बञ्चे पुरिसो कयिरा कयिराथेनं पुनप्पुनं ।

तस्मिं छन्दं कयिराथ सुखो पुब्बस्स उच्चयो ॥ ३ ॥

(पुण्यं चेत् पुरुषः कुर्यात्, कुर्याद् एतत् पुनः पुनः ।

तस्मिं ह्यन्दं कुर्यात् सुखः पुण्यस्य उच्चयः ॥ ३ ॥)

अदि मनुष्य पुण्य करे तो उसे बार २ करे । उस में खूब उत्साह बढ़ावे । पुण्य का संचय सुखका कारण होता है ।

जेतवन

अनाशपिण्डिक (सेठ)

११९-पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति ।

यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति ॥ ४ ॥

(पापोऽपि पश्यति भद्रं यावत् पापं न पच्यते ।

यदा च पच्यते पापं अथ पापः पापानि पश्यति ॥ ४ ॥)

जब तक पाप का फल नहीं मिलता है तब तक पापी को पाप बढ़ा अच्छा लगता है । जब पाप का फल होता है तब वह पापी को अपने स्वरूप में देखता है ।

१२०-भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति ।

यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्रानि पस्सति ॥ ५ ॥

(भद्रोऽपि पश्यति पापं यावद् भद्रं न पच्यते ।

यदा च पच्यते भद्रं अथ भद्रः भद्राणि पश्यति ॥ ५ ॥)

जब तक पुण्य का फल नहीं मिलता तब तक पुण्यारामा को पुण्य बुरा लगता है । जब पुण्यका फल होता है तब वह पुण्य को अपने स्वरूप में देखता है ।

जेतवन

मसंपमी (भिड्डु)

१२१-भावमञ्जेथ पापस्स न मन्त आगमिस्सति ।

उद्विन्दुनिपात्तेन उदकुम्भोपि पूरति ।

वालो प्रति पापस्स धाकू-थोकम्मि आचिन्नं ॥ ६ ॥

(मा ऽ वमन्येत पापं न मां तद् आगमिष्यति ।
उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भोऽपि पूर्यते ।
वालः पूरयति पापं स्तोकं स्तोकमप्याचिन्वन् ॥ ६ ॥)

“वह मेरे पास नहीं आयेगा” ऐसा (सोच) पाप की अवहेलना न करे । पानी की बूंद के गिरने से घड़ा भर जाता है । (ऐसे ही) मूर्ख थोड़ा-थोड़ा संचय करते पाप को भर लेता है ।

जैतवन

विलालपाद (सेठ)

१२२—मावञ्ज्थ पुञ्जस्स न मन्तं आगमिस्सति ।
उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।
धीरो पूरति पुञ्जस्स थोक-थोकग्गि आचिनं ॥ ७ ॥

(माऽवमन्येत पुण्यं न मां तद् आगमिष्यति ।
उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भो ऽपि पूर्यते ।
धीरः पूरयति पुण्यं स्तोकं स्तोकमप्याचिन्वन् ॥ ७ ॥)

“वह मेरे पास नहीं आयेगा” — ऐसा (सोच) पुण्य की अवहेलना न करे । पानी को० । धीर थोड़ा-थोड़ा संचय करते पुण्य को भर लेता है ।

जैतवन

महाधन (बणिक)

१२३—वाणिजो 'व भयं मगं अप्पसत्थो महद्धनो ।
विसं जीवितुकामो'व प पापानि परिवज्जये ॥ ८ ॥
(वणिगिच भयं माग्गं अल्पसार्थो महाधनः ।
विपं जीवितुकाम इव पापानि परिवर्जयेत् ॥ ८ ॥)

थोड़े काफिले और महाधन वाला बनजारा जैसे भययुक्त रास्ते को

छोड़ देता है, अथवा जीने की इच्छा वाला पुरुष जैसे विप को छोड़ देता है वैसे ही पुरुष पापों को छोड़ दे ।

बेखुबन

कुक्कुटमिष

१२४—पाणिमिहं चे वणो नास्स हरेय्य पाणिना विसं ।

नाञ्चणं विसमन्वेति नत्थि पापं अकुञ्चतो ॥ ९ ॥

(पाणौ चेद् वणो न स्यात् हरेत् पाणिना विषम् ।

नाञ्चणं विषमन्वेति, नास्ति पापं अकुञ्चतः ॥ ९ ॥)

यदि हाथ में घाव न हो, तो हाथ से विप को ले ले (क्योंकि)
बाब (= ब्रह्म)-रहित (शरीर में) विप नहीं लगता; (इसी प्रकार)
न करनेवाले को पाप नहीं लगता । ॐ

जैतवन

कीक (कुत्ते का शिकारी)

१२५—यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुत्सति

सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स ।

तमेव बालं पच्चेति पापं,

सुखमो रजो पटिवातं व खिचो ॥ १० ॥

(योऽपदुष्टाय नराय दुष्यति

शुद्धाय पुरुषायाऽनङ्गणाय ।

तमेव बालं प्रत्येति पापं, सुखमो

रजः प्रतिवातमिव क्षिप्तम् ॥ १० ॥)

जो दोषरहित शुद्ध निर्मल पुरुष को दोष लगाता है, उसी भइ को
(उसका) पाप लौट कर लगता है । (जैसे कि) सुख भूलि को हवा
के आने के रख फँकने में (वह फँकनेवाले पर पड़नी है) ।

जैतवन

(माणिकारखुलूपग) तिस्स (थेर)

१२६—गठममेके उप्पज्जान्ति निरयं पापकम्मिनो ।

सगं सुगतिनो यन्ति, परिनिव्वन्ति अनासवा ॥ ११ ॥

(गर्भमेक उत्पद्यन्ते, निरयं पापकर्मिणः ।

स्वर्गं सुगतयो यान्ति, परिनिर्वान्त्यनासवाः ॥११॥)

कोई (पुरुष) गर्भ में उत्पन्न होते हैं, (कोई) पापकर्मां नरक में (जाते हैं), (कोई) सुगतिवाले (पुरुष) स्वर्ग को जाते हैं; (और चित्त के) मलोंसे रहित (पुरुष) निर्वाणको प्राप्त होते हैं ।

जैतवन

३ भिक्षु

१२७—न अन्तल्लिक्खे न समुद्धमज्जे

न पव्वतानं विवरं पविस्स ।

न विज्जती सो जगतिप्पदेशो

यत्थट्ठितो मुञ्चेय्य पापकग्मा ॥ १२ ॥

(नान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये

न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।

न विद्यते स जगति प्रदेशो

यत्रस्थितो मुच्येत पापकर्मणः ॥१२॥)

न आकाश में न समुद्र के मध्य में न पर्वतों के विवर में प्रवेश कर—संसार में कोई स्थान नहीं है, जहाँ रहकर—पाप कर्मों के (फल से) प्राणी बच सकें ।

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम)

सुप्पबुद्ध (शान्त्य)

१२८-न अन्तल्लिक्खे न समुद्धमज्झे

न पब्बतानं विवरं पविस्स ।

न विज्जती सो जगतिप्पदेशो

यत्थट्ठितं न प्पसहेस्य मच्चू ॥१३॥

(नान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये

न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।

न विद्यते स जगति प्रदेशो

यत्रस्थितं न प्रसहेत मृत्युः ॥१३॥)

न आकाश मे०—जहाँ रहनेवाले को मृत्यु न सताये ।

१०—दण्डवर्गो

जेतवन

द्वन्विगय (भिक्षु)

१२९—सर्वे तसन्ति दण्डस्स सर्वे भायन्ति मच्चुनो ।

अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥ १ ॥

(सर्वे त्रस्यन्ति दण्डात् सर्वे विभ्यति मृत्योः ।

आत्मानं उपमां कृत्वा न हन्यात् न घातयेत् ॥ १ ॥)

दण्ड से सभी डरते हैं, मृत्यु से सभी भय खाते हैं, अपने समान (इन बातों को) जानकर न मारे न मारने की प्रेरणा करे ।

जेतवन

द्वन्विगय (भिक्षु)

१३०—सर्वे तसन्ति दण्डस्स सर्वेसं जीवितं प्रियं ।

अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥ २ ॥

(सर्वे त्रस्यन्ति दण्डात् सर्वेषां जीवितं प्रियम् ।

आत्मानं उपमां कृत्वा न हन्यात् न घातयेत् ॥ २ ॥)

सभी दण्ड से डरते हैं, सब को जीवन प्रिय है, (इसे) अपने समान जानकर न मारे और न मारने की प्रेरणा करे ।

जेतवन

बहुत से लङ्के

१३१—सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति ।

अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं ॥ ३ ॥

(सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिनस्ति ।
आत्मनः सुखमन्विष्यन् प्रेत्य स न लभते सुखम् ॥ ३ ॥)

१३२—सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति ।

अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुखं ॥ ४ ॥

(सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति ।
आत्मनः सुखमन्विष्यन् प्रेत्य स लभते सुखम् ॥ ४ ॥)

सुख चाहने वाले प्राणियों को, अपने मुँह की चाह से जो दण्ड से मारता है, वह मर कर सुख नहीं पाता । सुख चाहने वाले प्राणियों को, अपने सुख की चाह से, जो दण्ड से नहीं मारता, वह मर कर सुख को प्राप्त होता है ।

जन्वन

दुण्डधान (धेर)

१३३—मा वोच परुस कञ्चि वुत्ता पटिवदेय्यु तं ।

दुक्खा हि सारम्भकथा पटिदण्डा फुसेय्यु त ॥ ५ ॥

(मा वोच परुष किञ्चिद् उक्त्वा प्रतिवदेयुस्त्वाम् ।

दुःखा हि संरम्भकथा प्रतिदण्डा स्पृशेयुस्त्वाम् ॥ ५ ॥)

१३४—स चे नेरेसि अत्तान कसो उपहतो यथा ।

एस पत्तोसि निब्बाण सारम्भो ते न विञ्जति ॥ ६ ॥

(स चेत् नेरेयसि आत्मानं फांस्पमुपहतं यथा ।

एष प्राप्तोऽसि निर्घाणं संरम्भस्ते न विद्यते ॥ ६ ॥)

कठोर बघन न बोले, बोलने पर (दूसरे भी वैसे ही) मुग्ध बोलेंगे, दुर्बघन दुःखदायक (होने हैं), (बोलने से) बड़बड़े में मुग्ध

दण्ड मिलेगा । दूटा कांसा जैसे निःशब्द रहता है, (वैसे) यदि तुम अपने को (निःशब्द रक्खो), तो तुमने निर्वाण को पाखिया, तुम्हारे लिये कलह (= हिंसा) नहीं रही ।

श्रावस्ती (पूर्धाराम)

विसाखा आदि (उपासिकायें)

१३५—यथा दण्डेन गोपालो गावो पाचेति गोचरं ।

एवं जरा च मच्चू च आयुं पाचेन्ति पाणिनं ॥ ७ ॥

(यथा दण्डेन गोपालो गाः प्राजयति गोचरम् ।

एवं जरा च मृत्युश्चायुः प्राजयतः प्राणिनाम् ॥ ७ ॥)

जैसे ग्वाला लाठी से गायों को चरागाह में ले जाता है; वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों को आयु को ले जाते हैं ।

राजगृह (वेणुवन)

अजगर (प्रेत)

१३६—अथ पापानि कम्मनि करं वालो न बुज्झति ।

सेहि कम्मेहि दुम्मेधो अग्गिदद्दो 'व तप्पति ॥ ८ ॥

(अथ पापानि कर्माणि कुर्वन् वालो न बुध्यते ।

स्वैः कर्मभिः दुर्मैधा अग्निदग्ध इव तप्यते ॥ ८ ॥)

पाप कर्म करते वक्त मूढ़ (पुरुष उसे) नहीं बूझता, पीड़े दुर्बुद्धि अपने ही कर्मों के कारण आग से जले की भाँति अनुताप करता है ।

राजगृह (वेणुवन)

महामोग्गलान (थेर)

१३७—यो दण्डेन अण्डण्डेसु अप्पदुट्ठेसु दुस्सति ।

दसन्नमञ्जतरं ठानं खिप्पमेव निगच्छति ॥ ९ ॥

(यो दण्डेनादण्डेष्वप्रदुष्टेयु दुष्यति ।
दसानामन्यतमं स्थानं त्रिप्रमेव निगच्छति ॥ ६ ॥)

१३८—वेदनं फरुषं जानिं सरीरस्स च भेदनं ।
गरुहं वापि आबाधं चित्तक्खेपं व पापुणे ॥ १० ॥

(वेदनां परुषां ज्यानिं शरीरस्य च भेदनम् ।
गुरुकं चाऽप्याबाधं चित्तक्षेपं वा प्राप्नुयात् ॥ १० ॥)

१३९—राजतो वा उपस्समं अब्भक्खानं व दारुणं ।
परिक्खयं व त्रातीनं भोगानं व पभङ्गणं ॥ ११ ॥
(राजतो वोपसर्गमभ्याख्यातं वा दारुणम् ।
परिक्षयं वा ज्ञातीनां भोगानां वा प्रभंजनम् ॥ ११ ॥)

१४०—अथवस्स अगारानि अग्गी ड्हति पावको ।
कायस्स भेदा दुप्पञ्जो निरयं सोपपज्जति ॥ १२ ॥
(अथवाऽस्यागारापयग्निर्दहति पावकः ।
कायस्य भेदाद् दुष्प्रज्ञो निरयं स उपपद्यते ॥ १२ ॥)

जो दग्ध-रहितों को दग्ध से (पीड़ित करता है), निर्दोषों को दोष लगाता है, वह शीघ्र ही इन बातों में से एक को प्राप्त होता है । कड़वी वेदना, हानि, अंग का भंग होना, भारी बीमारी, (या) चित्त-त्रिषेध (= पागल) को प्राप्त होता है । या राजा से दग्ध को (प्राप्त होता है), दारुण निन्दा, जाति बन्धुओं का विनाश, भोगों का क्षय; अथवा उसके घर को अग्नि = पावक जलाता है; काया छोड़ने पर वह दुर्बुद्धि नरक में उत्पन्न होता है ।

जेतवन

बहुभक्तिक (भिक्षु)

१४१-न नगचरिया न जटा न पङ्का

नानासका थण्डिलसायिका वा ।

रजोवज्रल्लं उक्कुटिकप्पधानं

सोधेन्ति मच्चं अविंतिण्णकङ्खं ॥ १३ ॥

(न नग्नचर्यां न जटा न पङ्कं

नाऽनशनं स्थण्डिलशायिका वा ।

रजोजल्लियं उक्कुटिकप्रधानं

शोधयन्ति मर्त्यं अवितीर्णाकांक्षम् ॥ १३ ॥)

जिस पुरुष की आकांक्षायें समाप्त नहीं हो गईं, उस मनुष्य की शुद्धि, न नंगे रहने से न जटा से, न पङ्क (लपेटने) से, न फाका (= उपवास) करने से, न कड़ी भूमि पर सोने से, न धूल लपेटने से, और न उकड़ू बैठने से होती है ।

जेतवन

सन्तति (महामात्य)

१४२-अलङ्कतो चेपि समं चरेय्य

सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी ।

सव्वेसु भूतेसु निधाय दण्डं

सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू ॥ १४ ॥

(अलङ्कृतश्चेदपि शमं चरेत्

शान्तो दान्तो नियतो ब्रह्मचारी ।

सर्वेषु भूतेषु निधाय दण्डं

स ब्राह्मणः स श्रमणः स भिक्षुः ॥१४॥)

अलंकृत रहते भी यदि वह शान्त, दान्त, नियम तत्पर, ब्रह्मचारी, तथा सारे प्राणियों के प्रति दृढत्यागी है, तो वही ब्राह्मण है, वही श्रमण (= संन्यासी) वही भिक्षु है।

चेतवन

पित्तिक (धेर)

१४३—हिरीनिसेधो पुरिसो कोचि लोकस्मि विज्जति ।

यो निन्दं अप्पवोधति अस्सो भद्रो कसामिव ॥ १५ ॥

(हीनिपेध पुरुषः कश्चित् लोके विद्यते ।

यो निन्दां न प्रबुध्यति अश्वो भद्रः कशामिव ॥ १५ ॥)

लोक में कोई पुरुष होते हैं, जो (अपने ही) लज्जा करके निन्द (कर्म) को नहीं करते, जैसे उत्तम घोड़ा कोड़े को नहीं सह सकता, जैसे ही वह निन्दा को नहीं सह सकते ।

१४४—अस्सो यथा भद्रो कसान्निविट्ठा

आतापिनो संवेगिनो भवाथ ।

सद्दाय सीलेन च वीरियेन च

समाधिना धम्मविनिच्छयेन च ।

सम्पन्नविज्जाचरणा पत्तिस्सता

पहस्सथा दुक्खमिदं अत्तप्पकं ॥ १६ ॥

(अश्वो यथा भद्रः कशानिविष्ट

आतापिनः संवेगिनो भवतः ।

धर्मेणा शीलेन च वीर्येण च

समाधिना धर्मविनिश्चयेन च ।

सम्पन्नविद्याचरणाः प्रतिस्मृताः

प्रहास्यथ दुःखमिदं अनल्पकम् ॥१६॥)

कोड़े पड़े उत्तम बोड़े की भाँति, उद्योगी, ग्लानियुक्त, (वेगवान्) हो; श्रद्धा, आचार, वीर्य, समाधि, और धर्म निश्चय से युक्त (वन) विद्या और आचरण से समन्वित हो, स्मृतिवान हो इस महान् दुःख (-राशि) को पार कर सकते हो ।

१४५—उदकं हि नयन्ति नेत्रिका
उमुकारा नमयन्ति तेजनं ।

दारुं नमयन्ति तच्छका
अत्तानं दमयन्ति सुव्रता ॥ १७ ॥

(उदकं हि नयन्ति नेत्रिकाः, इपुकारा नमयन्ति तेजनम् ।
दारुं नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति सुव्रताः ॥१७॥)

नहरवाले पानी ले जाते हैं, वाण बनानेवाले वाण कां ठीक करते हैं,
बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं, सुन्दर व्रतवाले अपने को दमन करते हैं ।

११—जरावग्गो

जेववन

विताञ्जाकी सगीनी

१४६—कोनु हासो किमानन्दो निच्च पज्जलिते सति ।

अन्धकारेण ओणद्धा पदीप न गवेम्मथ ॥ १ ॥

(को नु हास क आनन्दो नित्य प्रज्वलिते सति ।

अन्धकारेणाधनद्धा प्रदीप न गवेषयथ ॥ १ ॥)

जब (समा)निय जल रहा है तो हसा कैसा, आनन्द कैसा ॥ अंधकार से घिरे तुम प्रदीप का खोज क्यों नहीं करते ?

एज्जगृह (वेणुवन)

भिरिमा

१४७—यत्स चित्तमत्तं विंश अरुकाय समुत्सित ।

आतुर बहुसङ्गस्य यत्स नत्थि धुव ठिति ॥ २ ॥

(पश्य चित्रं वृत्तं चिन्म अरु काय समुच्छिन्नम् ।

आतुर बहुसङ्गस्य यस्य नास्ति ध्रुव स्थिति ॥ २ ॥)

इस चित्रित छाया को देखा' तो क्यों से पूर्ण, पूछा, ध्याकुल तथा अनक सकल्य म युक्त है—जिसकी स्थिति अनित्य है ।

वेववन

एघारी (धरो)

१४८—परिनिष्णमिदं रूपं रोमनिष्ठु पमभुर ।

भिज्जती पूतिसन्देहो मरणन्त हि चारित ॥ ३ ॥ ।

(परिजीर्णमिदं रूपं रोगनीडं प्रभंगुरम् ।

भिद्यते पूतिसन्देहो मरणान्तं हि जीवितम् ॥ ३ ॥)

यह रूप जीर्ण-शीर्ण होने वाला है, रोगों का घर है, अत्यन्त भंगुर है । यह गंदा शरीर छूट जाता है । जीना का अन्त मरण में होता है ।

जेतवन

अभिमान (भिक्षु)

१४९—यानिमानि अपत्थानि अलावृत्तेव सारदे ।

कापोतकानि अट्ठीनि तानि दिस्वान का रतिः ॥ ४ ॥

(यानिमान्यपथ्यान्यलावृत्तीव शरदि ।

कापोतकान्यस्थीनि तानि दृष्ट्वा का रतिः ॥ ४ ॥)

शरद कालकी अपथ्य लौकी की भांति (फेंक दी गई) या कवृत्तर की सी (सफेद हो गई) हड्डियों को देखकर किसको इस (शरीर में) प्रेम होगा ?

जेतवन-

रूपनन्दा (थेरी)

१५०—अट्ठीनं नगरं कृतं मंसलोहितलेपनं ।

यत्थ जरा च मच्चू च मानो मक्खो च ओहितो ॥ ५ ॥

(अस्थनां नगरं कृतं मंसलोहितलेपनम् ।

यत्र जरा च मृत्युश्च मानो मक्खश्चावहितः ॥ ५ ॥)

हड्डियों का ढाचा (नगर) बना है है, जिस पर मांस और खट्टू का लेप चड़ा है, जिसमें जरा, मृत्यु, अभिमान और द्वेष छिपे हैं ।

जेतवन

मल्लिका देवी

१५१—जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता

अथो सरीरग्णि जरं उपेत्ति

सतं च धम्मो न जरं उपैति

सन्तो ह वै सन्धि पवेदयन्ति ॥ ६ ॥

(जीर्यन्ति वै राजरथाः सुचित्रा अथ शरीरमपि जरामुपैति ।
सर्वां च धर्मो न जरामुपैति सन्तो ह वै सद्भ्यः प्रवेदयन्ति ॥ ६ ॥)

राजा के सुचित्रित (रथ) पुराने हो जाते हैं, तथा यह शरीर भी पुराना हो जाता है । किन्तु सन्तो का धर्म पुराना नहीं होता । सन्त लोग सन्तों से ऐसा ही कहते हैं ।

बेतवन

(साल) उदाशी (बेर)

१५२-अप्पस्सुतायं पुरिसो बलिवद्धो' व जीरति ।

मांसानि तस्स बह्दन्ति पब्बा तस्स न बह्दति ॥ ७ ॥

(अल्पश्रुतोऽयं पुरुषो बलीवर्द्ध इव जीर्यति ।

मांसानि तस्य वर्द्धन्ते प्रश्ना तस्य न वर्द्धते ॥ ७ ॥)

यह अल्पश्रुत मनुष्य बल की तरह बढ़ता है । उसके मांस तो बढ़ते हैं किन्तु उसकी प्रश्ना नहीं बढ़ती ।

१५३-अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिच्चिसं ।

गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं ॥ ८ ॥

(अनेकजातिसंसारं समाधाधिषं अनिचिश्रमानः ।

गृहकारकं गवेपयन्, दुक्खा जातिः पुनः पुनः ॥ ८ ॥)

१५४-गहकारक । दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि ।

सब्बा ते फामुक्का भग्गा गहकूटं विसह्मितं ।

विसह्मारगतं चित्तं तप्पहानं स्वयमज्जग्गा ॥ ९ ॥

(गृहकारक, दृष्टोऽसि पुनर्गंहं न करिष्यसि ।
सर्वास्ते पार्श्विका भग्ना गृहकूटं विसंस्कृतम् ।
विसंस्कारगतं चित्तं तृष्णानां क्षयमध्यगात् ॥ ६ ॥)

अनेक जन्मों तक मैं संसार में लगातार भटकता रहा—गृह निर्माण करने वाले की खोज में । बार बार का जन्म दुःखमय हुआ ।

हे गृह के निर्माण करने वाले ! मैंने तुन्हें देख लिया, तुम फिर घर नहीं बना सकते । तुम्हारी कड़ियाँ सब टूट गईं, गृह का शिखर गिर गया । चित्त संस्कार रहित हो गया । तृष्णाओं का क्षय हो गया ।

वाराणसी (ऋषिपत्तन)

महाधनी सेठका पुत्र

१५५—अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योव्वने धनं ।

जिण्णकोंचा'व मायन्ति खीणमच्छे'व पल्ले ॥ १० ॥

(अचरित्वा ब्रह्मचर्यं अलब्ध्वा यौवने धनम् ।

जीर्णकोंचा इव ध्यायन्ते क्षीणमत्स्य इव पल्लवे ॥ १० ॥)

ब्रह्मचर्य का बिना आचरण किये, यौवन काल में बिना धन उपार्जन किये, मनुष्य—जिसमें मङ्गलियाँ खतम हो गई हैं ऐसे जलाशय में बैठे बूढ़े कोंच पत्ती की तरह—(वृद्धावस्था में) चिंता को प्राप्त होता है ।

१५६—अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योव्वणे धनं ।

सेन्ति चापातिखीणा'व पुराणानि अनुत्थुनं ॥ ११ ॥

(अचरित्वा ब्रह्मचर्यं अलब्ध्वा योवने धनम् ।

शेस्ते चापोऽतिक्षीण इव पुराणान्यनुतन्वन्तः ॥ ११ ॥)

ब्रह्मचर्य का बिना आचरण किये, या यौवन काल में बिना धन उपार्जन किये, मनुष्य (वृद्धावस्था में)—पुराने धनुष की तरह—अपनी अतीत बातों की ही चर्चा करता रहता है ।



१२--अत्तवग्गो

हुंहुमारगिरि (भेसकलावन)

बोधि राजकुमार

१५७-अत्तानं चे पियं जञ्जारक्खेय्य तं सुरक्खितं ।

तिण्णमञ्जतरं यामं पटिजग्गेय्य पण्डितो ॥ १ ॥

(आत्मानं चेत् प्रियं जानीयाद् रक्षेत्तं सुरक्षितम् ।

त्रयाणामन्यतमं यामं प्रतिजागृयात् पण्डितः ॥ १ ॥)

अपने को यदि प्रिय समझे तो अपने को सुरक्षित (संयत) रखे । पंडित तीनों में से किसी एक पहर में अवश्य जागरण करे ।

जेतवन

(शाक्यपुत्र) उपनन्द (धेर)

१५८-अत्तानं एव पठमं पटिरूपे निवेशये ।

अथञ्जमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो ॥ २ ॥

(आत्मानमेव प्रथमं प्रतिरूपे निवेशयेत् ।

अथान्यमनुशिष्यात् न क्लिश्येत् पण्डितः ॥ २ ॥)

पहिले अपने स्वयं को ही उचित मार्ग में लगावे, बाद में दूसरे को उपदेश दे । इस तरह पंडित क्लेश को न प्राप्त हो ।

जेतवन

(अभ्यास) तिस्स (धेर)

१५९-अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्जमनुसासति ।

सुदन्तो वत दग्गेथ अत्ता हि किर दुद्धमो ॥ ३ ॥

(आत्मान चेत् तथा कुर्याद् यथाऽन्यमनुशास्ति ।

सुदान्तो घत दमयेद्, आत्मा हि किल दुर्दम ॥ ३ ॥)

अपने को वैसा बनावे, जैसा दूसरे को अनुशासन करना है ।
(पहिले) अपने को भली प्रकार दमन करे, वस्तुतः अपने को दमन करना (ही) कठिन है ।

जेतवन

कुमार करसपकी माता (धेरी)

१६०—अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो पगो सिया ।

अत्तनाव'व सुदन्तेन नाथ लभति दुल्लभ ॥ ४ ॥

(आत्मा हि आत्मनो नाथ को हि नाथ पर स्यात् ।

आत्मनैघ सुदान्तेन नाथ लभते दुर्लभम् ॥ ४ ॥)

मनुष्य अपना स्वामी आप है, भला कोई दूसरा उसका स्वामी क्या होगा । अपने हा को अच्छी तरह दमन कर लने से वह दुर्लभ स्वामिन् का लाभ करता है ।

जेतवन

महाकाल (उपासक)

१६१—अत्तनाव क्त पाप अत्तन अत्तसम्भव ।

अभिमन्थति दुग्धेध वजिर 'व'स्समय मणिं ॥ ५ ॥

(आत्मनैव कृतं पाप आत्मज आत्मसम्भवम् ।

अभिमन्थति दुग्धेधस यज्जमिघादममय मणिं ॥ ५ ॥)

अपना किया पाप अपने हा से हाकर अपने हा उस दुषुदि मनुष्य को पावित्त करता है । पत्थर से उत्पन्न हारा पत्थर या हा मणि को पावता है ।

जेतवन

देवदत्त

१६२—यस्सच्चन्तदुसोल्यं मालुवा सालमिवोततं ।

करोति सो तथत्तानं यथा'नं इच्छति दिसो ॥ ६ ॥

(यस्याऽत्यन्तदौःशाल्यं मालुवा शालमिवाततम् ।

करोति स तथात्मानं यथैनमिच्छति द्विष्टः ॥ ६ ॥)

मालुवा लता से वेष्टित शाल (वृक्ष) की भाँति जिसका दुराचार फैला हुआ है; वह अपने को वैसा ही कर लेता है, जैसा कि उसके शत्रु चाहते हैं ।

राजगृह (वेणुवन)

संघ में फूट के समय

१६३—सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च ।

यं वै हितञ्च साधुञ्च तं वै परमदुष्करं ॥ ७ ॥

(सुकराण्यसाधुन्यात्मनोऽहितानि च ।

यद् वै हितं च साधु च तद् वै परमदुष्करम् ॥ ७ ॥)

दुरी बातों का करना बड़ा आसान है जिनसे अपना ही अहित होता है । उसे करना बड़ा दुष्कर है जो अच्छा और हितकर है ।

जेतवन

काल (धेर)

१६४—यो सासनं अरहतं अरियानं धम्मजीविनं ।

पटिक्रोसति दुग्मेधो दिट्ठिं निस्साय पापिकं ।

फलानि कट्ठकस्सेव अत्तघञ्जाय फलति ॥ ८ ॥

(यः शासनमर्हतां आर्याणां धर्मजीविनाम् ।

प्रतिक्रुश्यति दुर्मेधा दृष्टिं निःश्रित्य पापिकाम् ।

फलानि काष्ठकस्यैवात्महत्यायै फलति ॥ ८ ॥)

जो धर्मात्मा श्रेष्ठ अर्हतां के धर्म की—अपनी पाप मर्या मिथ्या धारणा के कारण—निन्दा करता है वह अपनी ही बर्बादी करता है, जैसे बाँस का फूल बाँस को ही नष्ट कर देता है ।

जेतवन

(चूल) काल (उपासक)

१६५—अत्तना'व क्त पाप अत्तना सक्किलिस्सति ।

अत्तना अकत्त पाप अत्तना' व विसुञ्जति ॥

सुद्धि असुद्धि पच्चत्त नाञ्जमञ्ज विसोधये ॥ ९ ॥

(आत्मनैव कृत पापं आत्मना सक्लिश्यति ।

आत्मनाऽकृत पापं आत्मनैव विशुध्यति ।

शुद्ध्यशुद्धी प्रत्यात्मं नाऽन्योऽन्यं विशोधयेत् ॥६॥)

अपना क्रिया पाप अपने को मैला करता है । अपना न किया पाप अपने को शुद्ध करता है । शुद्धि और अशुद्धि अपने ही में होती है । कोई किसी दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता ।

जेतवन

अत्तदत्थ (धेर)

१६६—अत्तदत्थ परत्थेन बहुनाऽपि न हापये ।

अत्तदत्थमभिञ्जाय सदत्थपनुतो सिया ॥ १० ॥

(आत्मनोऽर्थं परार्थं बहुनाऽपि न हापयेत् ।

आत्मनोऽर्थमभिजाय सदर्थप्रसित स्यात् ॥ १० ॥)

पराय क बहुत हित क लिये भा अपने हित का हानि न कर । अपने अर्थ की बात को मनभू सदर्थ र साधन में लग जाय ।

१३—लोकवर्गो

जेतवन .

कौदे अरुपवयस्क मिदु

१६७—हीनं धर्मं न सेवेय्य, प्रमादेन न संवसे ।

मिच्छादिदिष्टं न सेवेय्य न सिया लोक-वद्दुनो ॥ १ ॥

(हीनं धर्मं न सेवेत, प्रमादेन न संवसेत् ।

मिथ्यादिष्टं न सेवेत, न स्यात् लोकवर्द्धनः ॥ १ ॥)

नोच धर्म का सेवन न करे, प्रमाद से न रहे, मिथ्या धारणा में न पड़े, आवागमन का चक्र न बढ़ावे ।

कपिलवल्गु (न्यशोधाराम)

सुशोचन

१६८—उत्तिष्ठेत् नप्यमज्जेय्य धर्मं सुचरितं चरे ।

धम्मचारी सुत्तं मेति अस्मिं लोके परस्मि च ॥ २ ॥

(उत्तिष्ठेत् न प्रमाद्येद् धर्मं सुचरितं चरेत् ।

धर्मचारी सुत्तं मेति अस्मिं लोके परस्मि च ॥ २ ॥)

उठे, प्रमाद न करे, सदाचार के धर्म का आचरण करे । धार्मिक पुरुष इस लोक और परलोक दोनों जगह सुत्त पूर्वक रहना है ।

१६९—धर्मं चरे सुचरितं न तं दुचरितं चरे ।

धम्मचारी सुत्तं मेति अस्मिं लोके परस्मि च ॥ ३ ॥

(हंसा आदिस्यपथे यन्ति, आकाशे यन्ति ऋद्धिया ।

नीयन्ते धीरा लोकात् जिस्वा मारं सधाहिनीकम् ॥६॥)

हंस सूर्यपथ (आकाश) में उड़ते हैं, ऋद्धि से योगी भी आकाश में गमन करते हैं। अपनी सेना सहित मार को जीत पंडित लोग संसार से छूट जाते हैं।

वेदवन

चिन्ता (माणविका)

१७६-एकं धर्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो ।

चित्तिष्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ॥ १० ॥

(एकं धर्ममतीतस्य भूपाचादिनो जन्तोः ।

चिस्तीर्णपरलोकस्य नास्ति पापमकार्यम् ॥ १० ॥)

एक धर्म (सत्य) का अतिक्रमण कर जो भूठ थोड़ता है उस परलोक के चितन से रहित पुरुष के लिये कोई पाप ऐसा नहीं रह जाता जो वह न कर सके।

वेदवन

०१.५.५१ : *Im-pi-ya* (भुक्त दान)

१७७-न वे कदरिया देवलोकं वगन्ति

वाला ह वे न प्पसंसन्ति दानं ।

धीरो च दानं अनुमोदमानो

तेनेव सो होति सुखी पुर

(न ये कदर्या देवलोकं मज्जंति

वाला ह वे न

धीरश्च दानं अनुमोदमान

स भवति सु

कंजूस देवलोक नहीं जाते, मूढ़ दानकी प्रशंसा नहीं करते; धीर
ज्ञानका अनुमोदन कर, उसी (कर्म) से पर (लोक) में सुखी होता है ।

जेतवन

अनाथपिण्डिकके पुत्रका मरण

१७८—पथव्या एकरञ्जेन सग्गस्स गमनेन वा ।

सव्वलोकाधिपच्चेन सोतापत्तिफलं वरं ॥ १२ ॥

(पृथिव्या एकराज्यात् स्वर्गस्य गमनाद् वा ।

सर्वलोकाऽऽधिपत्याद् वा स्रोतापत्तिफलं वरम् ॥१२॥)

पृथ्वी के एक राज्य से, अथवा स्वर्ग गमन करने से, अथवा सारे लोक
का स्वामी हो जाने से भी श्रेष्ठ स्रोतापत्ति फल की प्राप्ति है ।



१४--बुद्धवर्गा

उठवेला (बोधिमंड)

मागन्दिय (मादण)

१७९-यस्य जितं नावजीयति

जितमस्स नो याति कोचि लोके ।

तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ॥ १ ॥

(यस्य जितं नावजीयते

जितमस्य न याति कश्चि लोके ।

तं बुद्धमनन्तगोचर अपदं केन पदेन नेस्यथ ? ॥ १ ॥)

जिसका जीता बेर्जाता नहीं किया जा सकता, जिनकी विजय को मसार का कोई भी धराधरी नहीं कर सकता, उस अनन्त ज्ञानी धीतनृष्य-बुद्ध को किस तरह बहका सकते हो ?

१८०-यस्स जालिनी विसत्थिमा

तण्हा नत्थि कुह्णिच्चि नेत्थे ।

तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ॥ २ ॥

(यस्य जालिनी विपान्मिमा तृष्णा

नास्ति कुग्रचित्तं नेतुम् ।

तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्यथ ? ॥ २ ॥)

जिम बन्धन में बालने वाली रिगु रूपी तृष्णा नहीं भी छे नहीं जा सकता उस अनन्त ज्ञानी धीतनृष्य बुद्ध को किस तरह बहका सकते हो ?

संकाश्य नगर

३५, मनुष्य

१८१-ये क्माणपमृता धीरा नेवलम्भूपसमे रता ।

देवापि तेसं पिह्यन्ति सम्वुद्धानं सतीमतं ॥ ३ ॥

(ये ध्यानप्रसिता धीरा नैष्कर्म्योपशमे रताः ।

देवा अपि तेषां स्पृहयन्ति सम्वुद्धानां स्मृतिमताम् ॥३॥)

जो धीर ध्यान में लगे, परम ज्ञान्त निर्वाण में रत हैं उन स्मृतिमान बुद्धों की स्पृहा देवता लोग भी करते हैं ।

पाराणसी

परकपत्ता (नागराज)

१८२-किच्छो मनुस्सपटिलभो किच्छं मच्चानं जीवितं ।

किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उत्पादो ॥ ४ ॥

(कृच्छो मनुष्यप्रतिलाभः कृच्छ्रं मर्त्यानां जीवितम् ।

कृच्छ्रं सद्धर्मश्रवणं कृच्छ्रो बुद्धानां उत्पादः ॥ ४ ॥)

मनुष्य योनि में जन्म लेना कठिन है, (जन्म लेकर भी) जीवित रहना कठिन है, (जीवित रहकर भी) सद्धर्म का श्रवण करना कठिन है, और बुद्धों का जन्म ग्रहण करना (और भी) कठिन है ।

जेतवन

आनन्द (थेर) का प्रश्न

१८३-सव्वपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा ।

सच्चित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान 'सासनं ॥ ५ ॥

(सर्वपापस्याकरणं कुशलस्योपसम्पदा ।

स्वचित्तपर्यवदापनं एतद् बुद्धानां शासनम् ॥ ५ ॥)

सारे पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना, यह है बुद्धों की शिक्षा ।

जेतवन

१८४—खन्ती परमं तपो तितिक्ष्वा,
निव्व्वाणं परमं वदन्ति बुद्धा ।
नहि प्रव्वजितो परूपघाती,
समणो होति परं विहेठयन्तो ॥ ६ ॥

(क्षान्तिः परमं तपः तितिक्षा निर्वाणं परमं वदन्ति बुद्धाः ।
नहि प्रव्रजितः परोपघाती श्रमणो भवति परं विहेठयन् ॥६॥)

सहन शीलता और क्षमा शीलता परम तप है, बुद्ध लोग निर्वाण को परम पद बताते हैं । दूसरों की हिसा करने वाला और सताने वाला प्रव्रजित सच्चा साधु नहीं होता ।

१८५—अनुपवादो अनुपघातो प्रातिमोक्खे च संवरो ।
मत्तञ्जुता च भत्तस्मिं पन्तञ्च सयनासनं ।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं ॥ ७ ॥
(अनुपवादोऽनुपघातः प्रातिमोक्षे च संवरः ।
माध्याह्नता च भक्ते प्रान्तं च शयनासनम् ।
अधिचित्ते चायोग एतद् बुद्धानां शासनम् ॥ ७ ॥)

निन्दा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन करना, भोजन में परिमाण को जानना, एकान्तवास, चित्त की शुद्धि में योग—यही है बुद्धों की शिक्षा ।

जेतवन

(उद्यम भिक्षु)

१८६—न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विञ्जति ।

अप्यस्सादा दुखा कामा इति विञ्जाय पण्डितो ॥ ८ ॥

(न कार्यापणवर्षेण तृप्तिः कामेषु विद्यते ।

अल्पास्वादा दुःखाःकामा इति विशाय पण्डितः ॥८॥)

१८७—अपि दिव्वेसु कामेसु रति सो नाधिगच्छति ।

तण्हक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको ॥ ९ ॥

(अपि दिव्येषु कामेषु रतिं स नाऽधिगच्छति ।

तृष्णाक्षयरतो भवति सम्यक्संबुद्धश्रावकः ॥ ९ ॥)

यदि रूप्यों (= कदाप्य) की वर्षा हो, तो भी (मनुष्य की) कामों (= भोगों) से तृप्ति नहीं हो सकती । (सभी) काम (= भोग) अल्प स्वाद, (और) दुःखद हैं, ऐसा जानकर पंडित देवताओंके भोगोंमें भी रति नहीं करता; और सम्यक्संबुद्ध (= बुद्ध) का श्रावक (= अनुयायी) तृष्णाको नाश करनेमें लगता है ।

जेतवन

श्रग्गिदत्त (ब्राह्मण)

१८८—बहुं वै सरणं यन्ति पव्वतानि वनानि च ।

आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता ॥ १० ॥

(बहु वै शरणं यान्ति पर्वतान् वनानि च ।

आरामवृक्षचैत्यानि मनुष्या भयतर्जिताः ॥ १० ॥)

१८९—नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं ।

नेतं सरणमागम सव्वदुक्खा पमुच्चति ॥ ११ ॥

(नैतत् खलु शरणं क्षेमं नैतत् शरणमुत्तमम् ।

नैतत् शरणमागम्य सर्वदुःखात्प्रमुच्यते ॥११॥)

मनुष्य भय के मारे पर्वत, वन, आराम (= उद्यान), वृत्त, चैत्य (= चौरा) आदिको देवता मान उनकी शरण में जाते हैं; किन्तु ये शरण मंगलदायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं; (क्योंकि) इन शरणों में जाकर सब दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता ।

जेतवन

अग्निदत्त (ब्राह्मण)

१९०—यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च सङ्घञ्च सरणं गतो ।

चत्तारि अरियसञ्चानि सम्मप्पञ्जाय पस्सति ॥ १२ ॥

(यश्च बुद्धं च धर्मं च संघं च शरणं गतः ।

चत्वार्यार्यसत्त्वानि सम्यक् प्रज्ञया पश्यति ॥ १२ ॥)

१९१—दुक्खं दुक्खसमुत्पादं दुक्खस्स च अतिक्रमं ।

अरियञ्च'ट्ठङ्गिकं ममां दुक्खूपसमगामिनं ॥ १३ ॥

(दुःखं दुःखसमुत्पादं दुःखस्य चातिक्रमम् ।

आर्याष्टांगिकं मार्गं दुःखोपशमगामिनम् ॥ १३ ॥)

१९२—एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं ।

एतं सरणमागम्य सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥ १४ ॥

(एतत् खलु शरणं क्षेमं एतत् शरणमुत्तमम् ।

एतत् शरणमागम्य सर्वदुःखात् प्रमुच्यते ॥१४॥)

जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया, जिसने चार आर्य सत्त्वों को —दुःख, दुःखकी उत्पत्ति, दुःख से मुक्ति, और मुक्तिगामी आर्य आष्टगिक

मार्ग—सम्यक् प्रज्ञा से देव लिया है, यही रक्षादायक शरण है, उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर वह सभी दुर्गों से मुक्त हो जाता है।

नेतवन

आनन्द (धेर) का प्रश्न

१९३—दुर्लभो पुरिसाजञ्चो न सो सञ्चत्थ जायति ।

यत्थ सो जायती धीरो तं कुलं सुखमेधति ॥ १५ ॥

(दुर्लभः पुरुषाजानेयो न स सर्वत्र जायते ।

यत्र स जायते धीरः तत् कुलं सुखमेधते ॥ १५ ॥)

उत्तम पुरुष दुर्लभ है, वह सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता, वह धीर (पुरुष) जहाँ उत्पन्न होता है, उस कुलमें सुखकी वृद्धि होती है।

नेतवन

बहुतसे भिक्षु

१९४—सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्धमदेशना ।

सुखा संघस्स सामग्गी सममानं तपो सुखो ॥ १६ ॥

(सुखो बुद्धानां उत्पादः सुखा सद्धर्मदेशना ।

सुखा संघस्य सामग्री समग्राणां तपः सुखम् ॥ १६ ॥)

सुखदायक है बुद्धोंका जन्म, सुखदायक है सच्चे धर्मका उपदेश, संघमें एकता सुखदायक है; और सुखदायक है एकतायुक्त हो तप करना।

चारिकाके समय

कस्सप बुद्धका सुवर्ण चैत्य

१९५—पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके ।

पपञ्चसमतिकन्ते तिष्णसोकपरिद्वे ॥ १७ ॥

(पूजार्हान् पूजयतो बुद्धान् यदि वा श्रावकान् ।

प्रपञ्चसमतिकान्तान् तीर्णशोकपरिद्वान् ॥ १७ ॥)

१९६-ते तादिसे पूजयतो निव्वुते अकुतोभये ।

न सक्का पुब्बं संखातुं इमेत्तप्पि केनचि ॥ १८ ॥

(तान् तादृशान् पूजयतो निवृत्तान् अकुतोभवान् ।

न शक्यं पुण्यं संख्यातुं एवम्मात्रमपि केनचित् ॥ १८ ॥)

पूजनीय बुद्धों, अथवा (उनके) अनुगामियों—जो संसार को अति
 प्रमत्त कर गये हैं, जो शोक भयको पार कर गये हैं—की पूजाके, (या)
 उन ऐसे मुक्त और निर्भय (पुरुषों) की पूजाके, पुण्यका परिमाण
 “इतना है”—यह नहीं कहा जा सकता ।

१५--सुखवग्गो

राम्य नगर

जातिकलदके उपरामनाथे

१९७-सुसुखं वत ! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो ।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥ १ ॥

(सुसुखं वत ! जीवामो वैरिप्पवैरिणः ।
वैरिपु मनुष्येषु चिहरामोऽवैरिणः ॥ १)

१९८-सुसुखं वत ! जीवाम आतुरेसु अनातुरा ।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ॥ २ ॥

(सुसुखं वत ! जीवाम आतुरेप्पनातुराः ।
आतुरेषु मनुष्येषु चिहरामोऽनातुराः ॥ २ ॥)

१९९-सुसुखं वत ! जीवाम उत्सुकेसु अनुस्सुका ।
उत्सुकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका ॥ ३ ॥

(सुसुखं वत ! जीवाम उत्सुकेप्पनुत्सुकाः ।
उत्सुकेषु मनुष्येषु चिहराम अन्नुत्सुकाः ॥ ३ ॥)

वैरियोंके प्रति (भी) अवैरो हो, अहो ! हम (कैसा) सुखपूर्वक
जीवन बिता रहे हैं; वैरी मनुष्योंके बीच अवैरो होकर हम विहार करते
हैं । भयभीत मनुष्योंमें अभय हो, अहो ! हम सुखपूर्वक जीवन बिता
रहे हैं; भयभीत मनुष्यों के बीच निर्भय होकर हम विहार करते हैं ।
उत्सुकों (= आसक्तों) में उत्सुकता-रहित हो ० ।

पंचसाला (ब्राह्मणग्राम, मगध)

मार

२००—सुसुखं वत ! जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं । ?

पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभास्सरा यथा ॥ ४ ॥

(सुसुखं वत ! जीवामो येषां नो नास्ति किञ्चन ।

प्रीतिभक्ष्या भविष्यामो देवा आभास्वरया यथा ॥ ४ ॥)

जिन हम (लोगों) के पास कुछ नहीं, ग्रहो ! वह हम कितना सुखसे जीवन बिता रहे हैं । हम आभास्वर देवताओं की भाँति प्रीतिभक्ष्य (= प्रीति ही भोजन है जिनका) हैं ।

जेतवन

कोसलराज

२०१—जयं वैरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो ।

उपसन्तो सुखं सेति हित्त्वा जयपराजयं ॥ ५ ॥

(जयो वैरं प्रसूते दुःखं शेते पराजितः ।

उपशान्तः सुखं शेते हित्त्वा जयपराजयौ ॥ ५ ॥)

विजय वैरको उत्पन्न करती है, पराजित (पुरुष) दुःखकी (नींद) सोता है; (राग भादि दोष जिसके) शान्त (है, वह पुरुष) जय और पराजयको छोड़ सुखकी (नींद) सोता है ।

जेतवन

कोई कुतर्कन्या

२०२—नत्थि रागसमो अग्नि, नत्थि दोससमो कलि ।

नत्थि सन्धसमा दुक्खा नत्थि सन्तिपरं सुखं ॥ ६ ॥

(नारित रागसमोऽग्निः, नास्ति दोषसमः कलिः ।

नारित रङ्घसमा दुःखाः, नास्ति शान्तिपरं सुखम् ॥ ६ ॥)

रागके समान अग्नि नहीं, द्वेषके समान मल नहीं, (पाँच) स्क्न्धोंके (= समुदाय) समान दुःख नहीं, शान्तिसे बढ़कर सुख नहीं ।

आलंबी

५६ उपाम ६

२०३-जिघच्छा परमा रोगा, सङ्घारा परमा दुखा ।

एवं जत्वा यथाभूतं निव्वाणं परमं सुखं ॥ ७ ॥

(जिघत्सा परमो रोगः, संस्कारः परमं दुःखम् ।

एतद् ज्ञात्वा यथाभूतं निर्वाणं परमं सुखम् ॥ ७ ॥)

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं, यह जान, यथार्थ निर्वाणको सबसे बड़ा सुख (कहा जाता है) ।

जैतवन

पसेनदि कोनलराज

२०४-आरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं ।

विस्सासपरमा जाती निव्वाणं परमं सुखं ॥ ८ ॥

(आरोग्यं परमो लाभः, सन्तुष्टिः परमं धनम् ।

विश्वासः परमा ज्ञातिः, निर्वाणं परमं सुखम् ॥ ८ ॥)

निरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है, निर्वाण परम (= सबसे बड़ा) सुख है ।

*रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान यह पाँच स्क्न्ध हैं । वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञानके अन्दर हैं । पृथिवी, जल, अग्नि, वायु ही रूप स्क्न्ध है । जिसमें न भारीपन है, और जो न जगह धरता है, वह विज्ञान स्क्न्ध है । रूप (= Matter) और विज्ञान (= Mind) इन्हेंके मेलसे सारा संसार बना है ।

वैशाली

तिस्त (धेर)

२०५—पविवेकरसं पीत्त्वा रसं उपसमस्स च ।

निदरो होति निष्पापो धम्मपीतिरसं पिवं ॥ ९ ॥

(प्रविवेकरसं पीत्त्वा रसं उपशमस्य च ।

निर्दरो भवति निष्पापो धर्मप्रीतिरसं पिवन् ॥ ९ ॥)

पुकान्त (चिन्तन) के रस, तथा उपशम (= शान्ति) के रसको पीकर (पुरुष), निदर होता है, (और) धर्मका प्रेमरस पानकर निष्पाप होता है ।

बेलुपग्राम (वेणुग्राम, वैशाली के पास)

उक्क (देवराज)

२०६—साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो ।

अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया ॥१०॥

(साधु दर्शनमार्याणां सन्निवासः सदा सुखः ।

अदर्शनेन बालानां निच्यमेव सुखी स्यात् ॥१०॥)

२०७—बालसंगतिचारी हि दीघमध्वानं सोचति ।

दुखो बालेहि संवासो अमित्तेनेव सर्वदा ।

धीरो च सुखसंवासो ज्ञातीनं 'व समागमो ॥११॥

(बालसंगतिचारी हि दीर्घमध्वानं सोचति ।

दुःखो बालैः संवासोऽमित्रेणैव सर्वदा ।

धीरथ सुखसंवासो ज्ञातोनामिद्य समागमः ॥११॥)

आर्या (= सपुरुषों) का दर्शन मन्दर है, मन्तों के साथ निवास मदा सुखदायक होता है; मूढ़ों के न दर्शन होने से (अनुप्य) मदा सुखी

तस्मात् प्रियं न कुर्यात्, प्रियापायो हि पापकः ।
 तथाः तेषां न विद्यन्ते येषां नास्ति प्रियाप्रियम् ॥३॥)
 त्वे प्रिय न बनाये । प्रिय से वियोग घुस होता है । उन्हें कोई
 । है जिन्हें न तो प्रिय है न अप्रिय ।

कोई कुटुम्बी

प्रतो जायते सांको प्रियतो जायते भयं ।

प्रतो विष्णुमुत्तमस नत्थि सांको कुतो भयं ॥३॥

प्रियतो जायते शोकः प्रियतो जायते भयम् ।

प्रतो विष्णुमुत्तमस्य नास्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥३॥)

(सु) से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता
 । प्रिय से जो मुक्त है, उसे शोक नहीं है, फिर भय

भिक्षा)

१६—पियवग्गो

वेतवन

तीन भिक्षु

२०९—अयोगे युञ्जमत्तानं योगस्मिञ्च अयोजयं ।

अर्थं हित्वा पियग्गाही पिहेत'त्तानुयोगिनं ॥ १ ॥

(अयोगे युञ्जन् आत्मानं योगे चायोजयन् ।

अर्थं हित्वा प्रिय-ग्राही स्पृहयेदात्मानुयोगिनम् ॥ १ ॥)

बुरे कर्म में लगा हुआ, अच्छे कर्म में न लगाने वाला, तथा परमार्थ को छोड़ सखार के आकर्षण में लगानेवाला पुरुष उस पुरुष की स्पृहा करे जो आत्मउन्नति में लग्न है ।

२१०—मा पियेहि समागच्छि अप्पियेहि कुदाचनं ।

पियानं अदस्सनं दुखं अप्पियानञ्च दस्सनं ॥ २ ॥

(मा प्रियैः समागच्छ, अप्रियैः कदाचन ।

प्रियाणां अदर्शनं दुःखं, अप्रियाणां च दर्शनम् ॥ २ ॥)

प्रियों का सग न करे, और न कभी अप्रियों का । प्रियों का न देखना दुःखद है, और अप्रियों का देखना ।

२११—तस्मा पियं न कयिराथ पियापायो हि पापको ।

गन्था तेसं न विज्जन्ति येसं नस्थि पियाप्पियं ॥ ३ ॥

(तस्मात् प्रियं न कुर्यात्, प्रियापायो हि पापकः ।

ग्रन्थाः तेषां न विद्यन्ते येषां नास्ति प्रियाप्रियम् ॥३॥)

इसलिये प्रिय न बनावे । प्रिय से वियोग घुरा होता है । उन्हें कोई ग्रन्थन नहीं है जिन्हें न तो प्रिय है न अप्रिय ।

वेदवन

कोई कुटुंबी

२१२-पियतो जायते सोको पियतो जायते भयं ।

पियतो विप्रमुक्तस्य नत्थि सोको कुतो भयं ॥३॥

(प्रियतो जायते शोकः प्रियतो जायते भयम् ।

प्रियतो विप्रमुक्तस्य नास्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥३॥)

प्रिय (वस्तु) में शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता है; प्रिय (के ग्रन्थन) में जो मुक्त है, उसे शोक नहीं है, फिर भय कहाँ से (हो) ?

(रत्या जायते शोको रत्या जायते भयम् ।

रत्या विप्रमुक्तस्य नास्ति शोकः कुतो भयम् ॥६॥)

रति (= राग) से शोक उत्पन्न होता है, रतिसे भय उत्पन्न होता है० ।

जेतवन

अनित्थिगन्धकुमार

२१५—कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं ।

कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥ ७ ॥

(कामतो जायते शोकः कामतो जायते भयम् ।

कामतो विप्रमुक्तस्य नास्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥७॥)

काम से शोक उत्पन्न होता है० ।

जेतवन

कोई ब्राह्मण

२१६—तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं ।

तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥८॥

(तृष्णाया जायते शोकः तृष्णाया जायते भयम् ।

तृष्णाया विप्रमुक्तस्य नास्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥८॥)

तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है० ।

राजगृह (वेणुवन)

पाच सौ बालक

२१७—शीलदस्सनसम्पन्नं धम्मट्ठं सच्चवाट्टिनं

अत्तनो कम्म कुब्बानं तं जनो कुरुते पियं ॥९॥

(शीलदर्शनसम्पन्नं धर्मिष्ठं सत्यवादिनम् ।

आत्मनः कर्म कुर्वाणं तं जनः कुरुते प्रियम् ॥ ९ ॥)

जो शील (= आचरण) और दर्शन (= विद्या) से सम्पन्न, धर्म में स्थित, सत्यवादी और अपने कामको करनेवाला है, उस (पुरुष) को लोग प्रेम करते हैं ।

२.१८-छन्दजातो अनहंखाते मनसा च फुटो सिया ।

कामेषु च अप्पटिवद्वचित्तो उद्वंसोतां ति वुच्चति ॥१०॥

(छन्दजातोऽनाग्याते मनसा च स्फुरितः स्यात् ।

कामेषु चाऽप्रतिबद्धचित्त ऊर्ध्वस्रोता इत्युच्यते ॥१०॥)

जो अरुध्य (-वस्तु = निर्वाण) का अभिजायी है, (उसमें) जिसका मन लगा है, कामों (= भावों) में जिसका चित्त बद्ध नहीं, वह ऊर्ध्व-स्रोत कहा जाता है ।

बहुत दिनों तक विदेश में रहने के बाद दूर से सकुशल घर लौटे पुरुष को जाति-भाई, मित्र और हितैषी स्वागत करते हैं ।

वैसे ही इस लोक से परलोक गये पुण्यान्मा पुरुष को उसके पुण्य अपने सम्बन्धी के समान स्वागत करते हैं ।

१७--कोधवग्गो

कविःअवस्तु (न्यग्रोभारान)

रोहिणी

२२१-क्रोधं जहं विप्रजहेद्य मानं

सञ्चोजनं सञ्चमतिक्रमेद्य ।

तं नाम-रूपस्मिं असज्जमानं -

अकिञ्चनं नानुपनन्ति दुक्त्रा ॥१॥

(क्रोधं जहाद् विप्रजयात् मानं

संयोजनं सचमतिक्रमेत् ।

तं नाम-रूपयोरमज्जमानं

अकिञ्चनं नाऽनुपनन्ति दुक्त्रानि ॥१॥ १

जो चढ़ते क्रोध को भटके रथ की तरह रोक लेता है उसी को मैं सथा सारथी कहता हूँ—दूसरे तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं ।

राजगृह (वेणुवन)

उत्तरा (उवाचिका)

२२३-अक्रोधेन जिने क्रोधं असाधुं साधुना जिने ।

जिने कदरियं दानेन सत्त्वेन अलिकवादिनं ॥३॥

(अक्रोधेन जयेत् क्रोधं, असाधुं साधुना जयेत् ।

जयेत् कदर्यं दानेन सत्येनाऽस्लीकघादिनम् ॥३॥)

अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु को साधु (= भलाई) से जीते, कृपण को दान से जीते, मूठ बोलनेवाले को सत्य से (जीते) ।

वेणुवन

महामोग्गवान (देर)

२२४-सत्त्वं भणे न कुद्देय्य, दज्जा'प्पस्मिग्गि याचितो ।

एतेहि तोहि टानेहि गच्छे देवान सन्तिके ॥४॥

(सत्त्वं भणेत न कुद्ध्येत्, दद्यादल्पऽपि याचितः ।

एतैस्त्रिभिः स्थानैः गच्छेद् देवानामन्तिके ॥४॥)

सब बोले, क्रोध न करे, थोड़ा भी माँगने पर दे, इन तीन यार्नों में (पुरुष) देवताओं के पास जाता है ।

मावेत्त (= अशोष्या)

माद्वय

२२५-अहितका ये मुनयो नित्यं फायेन संजुता ।

ते यन्ति अश्चुतं टानं यन्थ गन्त्वा न सोचरे ॥५॥

(अहितका ये मुनयो नित्यं फायेन संजुताः ।

ते यन्ति अश्चुतं स्थानं यत्र गत्वा न शोचन्ति ॥५॥)

जो मनुष्य हिंसा से रहित, नित्य अपने शरीर में संयत हैं वे उस भव्युत पद को प्राप्त करते हैं जिसे प्राप्त कर वे शोक नहीं करते ।

राजगृह (गृहस्थ)

राजगृह-श्रेणी का पुत्र

२२६-सदा जागरमानानं अहोरात्रानुसिक्त्विनं ।

निव्वाणं अधिमुत्तानं अर्थं गच्छन्ति आसवा ॥६॥

(सदा जाग्रतां अहोरात्रं अनुशिक्षमाणानाम् ।

निर्वाणं अधिमुत्तानां अर्थं गच्छन्ति आसवाः ॥६॥)

उनके आनत्र (चित्त-मल) नष्ट हो जाते हैं जो सदा जागरण-शील हो दिन-रात योगाभ्यास में लगे रहते हैं और निर्वाण ही जिनका पुरु उद्देश्य है ।

हे अतुल ! यह पुरानी बात है, आज की नहो — (लोग) चुप बैठे हुए की निन्दा करते हैं, और बहुत बोलनेवाले की भी, मितभाषी की भी निन्दा करते हैं; दुनियाँ में अनिन्दित कोई नहीं है । बिज्जुल ही निन्दित या बिज्जुल ही प्रशंसित पुरुष न था, न होगा; न आजकल है ।

जैनवन

अतुल (उपासक)

२२९—यञ्चे विब्बू पसंसन्ति अनुविच्च सुवे सुवे ।

अच्छिद्दवृत्तिं मेधाधि पञ्जाशीलसमाहितं ॥ ९ ॥

(यञ्चेद् विद्वाः प्रशंसन्ति अनुविच्य श्वः श्वः ।

अच्छिद्दवृत्तिं मेधाधि नं प्रज्ञाशीलसमाहितम् ॥ ९ ॥)

२३०—नेक्खं जम्बूनदस्सेव को तं निन्दितुमरहति ।

देवापि तं पसंसन्ति ब्रह्मणाऽपि पमंसितो ॥ १० ॥

(निष्कं जम्बूनदस्येव कस्तं निन्दितुमर्हति ।

देवा अपि तं प्रशंसन्ति ब्रह्मणाऽपि प्रशंसितः ॥ १० ॥)

जिस निर्दोष भाचरण वाले मेधावी प्रज्ञा और शील से युक्त पुरुष की प्रशंसा बिना लोग दिन प्रति दिन समझ समझ कर करते हैं, उस सच्चे सोने जैसे की निन्दा भला कौन कर सकता है । देवता लोग भी उसकी प्रशंसा करते हैं और प्रमहदेव भी ।

वेणुवन

बज्रिय (भिक्षु)

२३१—कायप्पकोपं रक्खेय्य कायेन संतुतो सिया ।

कायदुच्चरितं हित्त्वा कायेन मुचरितं चरे ॥ ११ ॥

(कायप्रकोपं रक्षेत् कायेन संवृतः स्यात् ।

कायदुश्चरितं हित्त्वा कायेन सुचरितं चरेत् ॥ ११ ॥)

१८—मलवग्गो

जेतवन

गोधातक-पुत्र

२३५—पाण्डुपलासो' व दानिसि, यमपुरिसापि च तं उपट्ठिता ।

उच्चोगमुखे च तिट्ठसि पाथेय्यग्गि च ते न विज्जति ॥१॥

।पाण्डुपलासमिचेदानीमसि यमपुरुषा अपिच त्वामुपभित्तम् ।
उच्चोगमुखे च तिष्ठसि पाथेयमपि च ते न विद्यते ॥ ॥)

२३६—सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं चायम पण्डितो भव ।

निद्वन्तमत्तो अनङ्गणो दिव्वं अरियभूमिमेदिसि ॥ २ ॥

(स कुरु दीपमात्मनः क्षिप्रं व्यायच्छस्य पण्डितो भव ।

निर्धृतमत्तोऽनंगणो दिव्यां आर्यभूमि पश्यसि ॥ २ ॥)

पोंजे पसेके समानतू इम वक्तू है, यमनूत तेरे पास आ खड़े है, प्रवाणके लिये तय्यारकु है, और पाथेय तेरे पास छु नहीं है । सो तू अपने लिये दीप (= स्थापना) बना, उच्चोग कर, पहिल बन, मल प्रकाशित कर, दोपरदिन बन आर्योके दिव्य पद को पावेगा ।

जेतवन

गोधातक-पुत्र ।

२३७—उपनितायो च दानिसि सम्पयातोमि यमसु + न्तिरे ।

वासोपि च ते नन्थि अन्तरा पाथेय्यग्गि च ते न विज्जति ॥३॥

(उपनीतवया इदानीमसि

यसम्प्रयातोऽसि मस्याऽन्तिके ।

वासोऽपि च ते नाऽस्ति अन्तरा

पाथेयमपि च ते न विद्यते ॥ ३ ।)

२.३८-सो करोहि द्वापनग्नो त्रिषं वायम पण्डितो भव ।

निद्वन्तमलो अन्तरगो न पुन जातिजरं उपेक्षिसि ॥ २ ॥

(स कुरु द्वापमानमनः त्रिषं व्याच्छ्व पण्डितो भव ।

निर्धृतमलोऽन्तरगो न पुनर्जातिजरे उपेक्ष्यसि । ४ ॥)

आयु नेरो समाप्त हो गई, यमके पास पहुँच चुका, निवास (स्थान) भी मेरा नहीं है, (यात्राके मध्यके स्थाने नेरो पास पायेन भी नहीं ।)
सो वृ अपने स्थाने ।

(अयस इव मलं समुत्थितं त (स्मा)द्

उत्थाय तदेव खादति ।

एवमतिधावनचारिणं स्वानि

कर्माणि नयन्ति दुर्गतिम् ॥ ६ ॥)

लोहा का मुरचा उससे उत्पन्न होकर उसी को खाता है, वैसे ही सदाचार का उलंघन करने वाले मनुष्य के अपने ही कर्म उसे दुर्गति को प्राप्त कराते हैं ।

क्षतवन

(लाल) उदायी (शेर)

२४१—असज्जायमला मन्ता अनुट्ठानमला घरा ।

मलं वण्णस्स कौसज्जं प्रमादो रक्खतो मलं ॥ ७ ॥

(अथाध्यायमला मन्ना अनुत्थानमला गृहाः ।

मलं वर्णस्य कौसीद्यं, प्रमादो रक्षतो मलम् ॥ ७ ॥)

पाठ का न करना मंत्र का मैल है, भाड़ बहाड़ न करना घर का मैल है, अलस्य सौन्दर्य का मैल है, असावधानी पहरेदार का मैल है ।

रजगृह (वेणुवन)

(कोर) कुलपुत्र

२४२—मल्लिथिया दुच्चरितं मच्छेरं ददतो मलं ।

मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परमिह च ॥ ८ ॥

(मलं खिया दुच्चरितं मात्सयं ददतो मलम् ।

मलाद्वै पापका धर्मा अस्मिन् लोके परम च ॥ ८ ॥)

खी का मैल दुराचार है, दानी का मैल कर्तव्य है । पाप इस लोक और पालोक दोनों के मैल हैं ।

जेतन

पौत्र सौ उपासक

२४६—यो पाणमतिपातेति मुसावादञ्च भासति ।

लोके आदिन्नं आदियति परदारञ्च गच्छति ॥१२॥

(यः प्राणमतिपातयति मृषावादं च भाषते)

लोकेऽदत्तं आदत्ते परादारांश्च गच्छति ॥१२॥)

२४७—सुरामेरेयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति ।

इषेवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो ॥१३॥

(सुरामेरेयपानं च यो नरोऽनुयुनक्ति ।

इषैवमेव लोके मूलं खनत्यात्मनः ॥१३॥)

२४८—एवं भो पुरिस ! जानाहि पापधम्मा असञ्जता ।

मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयुं ॥१४॥

(एवं भो पुरुष ! जानीहि पापधर्माणोऽसंयतान् ।

मा त्वां लोभाऽधर्मश्च चिरं दुःखाय रन्धयेताम् ॥१४॥)

जो जीव हिंसा करता है, भूठ बोजता है, धोरी करता है, परस्त्रीगमन करता है, शराय दारू पीता है वह इस ससार में अपनी ही जड़ खोदता है ।

हे पुरुष ! सधर्म रहित पाप कर्म ऐसे ही होते हैं, इन्से जानो । पुण्य लोभ और अधर्म धिरकाल तक दुःख में न बाजें रहें ।

जेतन

विस्म (बालक)

२४९—ददन्ति वे यथासद्वं यथापसादनं जना ।

तत्थ यो मंजु भवति परेमं पानभाजने ।

न सो दिग्ग वा रत्ति वा ममाधिं श्रधिगच्छति ॥ १५ ॥

(ददाति वै यथाश्रद्धं यथाप्रसादनं जनः ।

नत्र यो मूको भवति परेषां पानभोजने ।

न स दिवा वा रात्रौ वा समाधिमधिगच्छति ॥१५॥)

२५०—यस्स च तं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं ।

स वै दिवा वा रत्ति वा समाधिं अधिगच्छति ॥१६॥

(यस्य च तत् समुच्छिन्नं मूलघातं समुद्धतम् ।

स वै दिवा रात्रौ वा समाधिं अधिगच्छति ॥१६॥)

लोग अपनी श्रद्धा भक्ति के अनुसार दान देते हैं । दूसरों के खाने पीने को देख जो सह नहीं सकता वह दिन या रात कभी भी एकाग्रता का लाभ नहीं करता ।

जिसकी ऐसी मनोवृत्ति उच्छिन्न हो गयी है, समूल नष्ट हो गई है, वही दिन और रात एकाग्रता का लाभ करता है ।

जेतवन

पुँच उपासक

२५१—नत्थि रागसमो अग्नि नत्थि दोससमो गहो ।

नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी ॥१७॥

(नास्ति रागसमोऽग्निः नाऽस्ति द्वेषसमो ग्राहः ।

नाऽस्ति मोहसमं जालं नाऽस्ति तृष्णा समा नदी ॥१७॥)

रागके समान आग नहीं, द्वेषके समान ग्रह (=भूत, चूड़ैल) नहीं; मोहके समान जाल नहीं, तृष्णा के समान नदी नहीं ।

भट्टियनगर (जातियावन)

मेण्डक (श्रेष्ठो)

२५२—सुदस्सं वज्जमब्जेसं अत्तनो पन दुदसं ।

परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथाभुसं ।

अत्तनो पन छादेति कलिं' व कित्वा सठो ॥१८॥

(सुदृश्यं वद्यमन्येषां आत्मनः पुनर्दुर्दृश्यं ।

परेषां हि स वद्यानि अत्रपुनाति यथानुपमम् ।

आत्मनः पुनः ह्यादयति कलिमिव कितघात् शठः ॥१८॥)

दूसरेका दोष देखना आसान है, किन्तु अपना (दोष) देखना कठिन है । वह (पुरुष) दूसरोके ही दोषोको भुस्सेकी भाँति उड़ाता फिरता है, किन्तु अपने (दोषो) को वैसे ही ढाँकता है, जैसे शठ जुआरो से पासे को ।

जेतवन

उज्ज्वानसञ्जी (बेर)

२५३-परवज्जानुपस्सिस्स निच्चं उज्ज्वानसञ्जिनो ।

आसवा तस्स वद्दन्ति आरा स आसवक्खया ॥१९॥

(परषद्याऽनुदर्शिनो नित्यं उद्ध्यावसंक्षिनः ।

आस्रवास्तस्य वर्द्धन्ते आराद् स आस्रवक्षयात् ॥१९॥)

दूसरो के दोष देखने वाले, तथा सदा दूसरो की टीका टिप्पण करने वाले के चित्त मल बढ़ते हैं । चित्तमलो के चयसे वह पृथक है ।

कुरीनगर

मुम्ह (परिभाजक)

२५४-आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि चाहिरे ।

पपञ्चाभिरता पजा निष्पपञ्चा तथागता ॥२०॥

(आकाशे च पदं नास्ति भ्रमणो नास्ति बद्धिः ।

प्रपंचाऽभिरताः प्रजा निष्प्रपंचास्तथागताः ॥२०॥)

२५५-आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि चाहिरे ।

मङ्ग्वारा ससता नत्थि, नत्थि बुद्धानमिज्जितं ॥२१॥

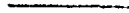
(आकाशे च पदं नाऽस्ति श्रमणो नाऽस्ति बहिः ।

संस्काराः शाश्वता न सन्ति,

नाऽस्ति बुद्धानामिङ्गितम् ॥२१॥)

आकाश में ठहराव नहीं, बाहर में सच्चे श्रमण नहीं । लोग प्रपञ्च में रत हैं । तथागत प्रपञ्च रहित हैं ।

आकाश में ठहराव नहीं, बाहर में सच्चे श्रमण नहीं । संस्कृत पदार्थ नित्य नहीं, बुद्धों में चंचलता नहीं ।



१९--धम्मट्टवग्गो

जेतवन

विनिच्छयमहामच्च (= जज)

२५६-न तेन होति धम्मट्ठो येनत्थं सहसा नये ।

यो च अत्थ अनत्थञ्च उभो निच्छेत्थय पण्डितो ॥ १ ॥

(न तेन भवति धर्मस्थो येनार्थं सहसा नयेत् ।

यश्चाऽर्थं अनर्थं च उभौ निश्चिनुयात् पण्डितः ॥ १ ॥)

२५७-असाहसेन धम्मेन समेन नयती परे ।

धम्मस्स गुत्तो मेधावी धम्मट्ठो'ति पवुच्चति ॥ २ ॥

(असाहसेन धर्मेण समेन नयते परान् ।

धर्मेण गुप्तो मेधावी धर्मस्थ इत्युच्यते ॥ २ ॥)

बिना विचारे यदि कोई न्याय करता हो तो वह न्यायाधीश नहीं । जो पंडित सच्चे और झूठे दोनों का निर्णय कर विचार पूर्वक धर्म में पक्षपात रहित होकर न्याय करता है वही धर्म की रक्षा करने वाला सच्चा न्यायाधीश कहा जाता है ।

जेतवन

वज्जिय (भिद्दु)

२५८-न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति ।

सैमी अवेरी अभयो पण्डितो'ति पवुच्चति ॥३॥

(न तावता पंडितो भवति यावता बहु भाषते ।
क्षेमी अचैरी अभयः पंडित इत्युच्यते ॥३॥)

बहुत भाषण करने से पंडित नहीं होता । जो क्षेमवान् अचैरी और अभय होता है, वही पंडित कहा जाता है ।

अर्थ

पुस्तक (५२)

२.५०.-न तावता धम्मधरो यावता बहु भासति ।
यो च अप्पपि सुत्तान् धम्मं कायेन पत्तति ।
स वे धम्मधरो होति यो धम्मं नप्पमज्जति ॥३॥

(न तावता धर्मधरो यावता बहु भाषते ।
यश्चाल्पमपि श्रुत्वा धर्मं कायेन पश्यति ।
स वै धर्मधरो भवति यो धर्मं न प्रमाद्यति ॥३॥)

स्योंकि यह बहुत बोलता है इसलिये वह धर्मधर नहीं होता । जो अल्प भी श्रावण कर धर्म का मानसिक साक्षात् कर्ता है वही धर्मधर है, जो धर्म न प्रमाद नहीं करता ।

जेतवन

लकुण्डक भद्रिष (धेर)

२६१—यहि सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्जमो दमो ।

स वै वन्तमलो धीरो धेरो 'ति पवुच्चति ॥६॥

(यस्मिन् सत्यं च धर्मश्चाहिंसा संयमो दमः ।

स वै चान्तमलो धीरः स्थविर इत्युच्यते ॥६॥)

जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम है, वही विगतमल, धीर और स्थविर कहा जाता है ।

जेतवन

कितने ही भिनु

२६२—न वाक्करणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा ।

साधुरूपो तगे होति इस्सुकी मच्छरी सठो ॥७॥

(न वाक्करणमात्रेण वर्णपुष्कलतया वा ।

साधुरूपो नरो भवति ईर्षुको मत्सरी शठः ॥७॥)

२६३—यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहत्तं ।

स वन्तदोसो मेधावो साधुरूपो 'ति वुच्चति ॥८॥

(यस्य चेतत् समुच्छिन्नं मूलघातं लमुद्द्यतम् ।

स चान्तदोषो मेधावी साधुरूप इत्युच्यते ॥८॥)

ईर्ष्या और मात्सर्य से युक्त शठ पुरुष अपने वचन या सौन्दर्य के कारण अच्छा नहीं हो सकता ।

जिसका यह उच्छिन्न हो गया है, समूह नष्ट हो गया है वही ईर्ष्य रहित मेधावी अच्छा कहा जाता है ।

चेतवन

इत्यक (मित्त)

२६४—न मुण्डकेन समणो अब्वतो अलिकं भणं ।

इच्छालाभसमापन्नो समणो किं भविस्सति ॥९॥

(न मुंडकेन धमणो उवतोऽलीकं भणन् ।

इच्छालाभसमापन्नः धमण किं भविष्यति ॥९॥)

२६५—यो च समेति पापानि अणुं थूलानि सब्वसो ।

समितत्ता हि पापानं समणोति पवुच्चति ॥१०॥

(यश्च शमयति पापानि अणुनि स्थूलानि सर्वशः ।

शमितत्त्वाद्धि पापानं धमण इत्युच्यते ॥१०॥)

जो बतरहित, मिथ्याभाषी है, वह मुच्छिन होने मात्र से धमण नहीं होता । इच्छा लाभसे भरा (पुण्य), क्या धमण होगा ? जो बड़े बड़े पापोंको सर्वथा शमन करनेवाला है; पापको शमित होनेके कारण उस धमण (= धमण) कहा जाता है ।

नेतवन

कोई मादण

२६७—यो'ध पुञ्जञ्च पापञ्च वाहित्वा ब्रह्मचरियवा ।

सङ्खाय लोके चरति स वे भिक्खू'ति वुच्चति ॥१२॥

(य इह पुण्यं च पापं च वाहयित्वा ब्रह्मचर्यवान् ।

संख्याय लोके चरति स वै भिक्षुरित्युच्यते ॥१२॥)

जो यहाँ पुण्य और पापको छोड़ ब्रह्मचारी बन, ज्ञानके साथ लोभमें विचरता है, वह भिक्षु कहा जाता है ।

नेतवन

तीर्थिक

२६८—न मोनेन मुनी होति मुल्लरूपो अविद्दसु ।

यो च तुलं'व पगग्घ वरमादाय पण्डितो ॥१३॥

(न मौनेन मुनिर्भवति मूलरूपोऽविद्वान् ।

यश्च तुलामिघ प्रगृह्य वरमादाय पण्डितः ॥१३॥)

२६९—पापानि परिज्जेति स मुनी तेन सो मुनि ।

यो मुनाति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति ॥१४॥

(पापानि परिवर्जयति स मुनिस्तेन स मुनिः ।

यो मनुत उभौ लोको मुनिरतेन प्रोच्यते ॥१४॥)

मौन धारण करने मात्र से कोई अविद्वान मूढ़ मुनि नहीं होता । जो पण्डित—मानो श्रेष्ठ तुला प्रदण करके दोनों लोकों का मान करता है (तौलना है) और पापों को छोड़ देता है वह इस कारण मुनि है और मुनि कहा जाता है ।

जेतवन

अरिय बालिसिक

२७०—न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति ।

अहिंसा संबवपाणानं अरियो'ति पवुच्चति ॥१५॥

(न तेनाऽऽर्यो भवति येन प्राणान् हिनस्ति ।

अहिंसा सर्वप्राणानां आर्य इति प्राच्यते ॥१५॥)

प्राणियोंको हनन करनेसे (कोट्टे) आर्य नहीं होना, सभी प्राणियोंकी
हिंसा न करनेसे (उये) आर्य कहा जाता है ।

२०—भगवद्गीता

अथर्व

पाँचवीं अध्याय

२७३—महान्मूर्च्छाङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा ।

विरागो सेट्ठो धर्मानं द्विपदानञ्च चक्षुमा ॥१॥

(मार्गं षामष्टांगिकः श्रेष्ठः सत्यानां चत्वारि पदानि ।

विरागः श्रेष्ठो धर्माणां द्विपदानां च चक्षुमान् ॥१॥)

२७४—एसोऽत्र मगो नत्थञ्जो दस्सतस्स विसुद्धिया ।

एतं हि तुम्हे पटिपज्जथ मारस्सेत पमोहनं ॥२॥ .

(एष एव मार्गो नाऽस्त्यन्यो दर्शनस्य विशुद्धये ।

एतं हि यूयं प्रतिपद्यथ मारस्योप प्रमोहनं ॥२॥)

मार्गो में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है, सत्त्यों में चार पद (= चार भाग्यमय) श्रेष्ठ हैं, धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है, द्विपदों (= मनुष्यों) में चक्षुमान् (= ज्ञाननेत्रधारी, बुद्ध) श्रेष्ठ हैं। दर्शन (= ज्ञान) की विशुद्धि के लिए यही मार्ग है, दूसरा नहीं; (भिक्षुभो !) इसी पर तुम आरुह्य होओ, यहाँ मार को मूर्च्छित करने वाला है ।

अथर्व

पाँचवीं अध्याय

२७५—एतं हि तुम्हे पटिपत्ता तुक्खस्सन्तं करिस्सथ ।

अम्यातो वे मया ममो थञ्जाय मत्तमन्थनं ॥३॥

(एतं हि यूयं प्रतिपन्ना दुःखस्यान्तं करिष्यथ ।
आख्यातो वै मया मार्ग आश्वाय शल्य-संस्थानम् ॥३॥)

२७६—तुम्हेहि किञ्चं आतप्यं अक्खातारो तथागता ।

पटिपन्ना पमोक्खन्ति म्हायिनो मारवन्धना ॥ ४ ॥

(शुष्माभिः कार्यं आतप्यं आख्यातारस्तथागताः ।
प्रतिपन्नाः प्रमोक्ष्यन्ते ध्यायिनो मारवन्धनात् ॥ ४ ॥)

इस मार्ग पर आरूढ़ हो तुम दुःखों का अंत कर दोगे । शल्य-सन्धान
दुःख का निवारण-स्वरूप निर्वाण को जान मैंने इस का उपदेश किया है ।
काम तो तुम्हीं को करना है, बुद्ध केवल उपदेश भक्त कर देते
हैं । ध्यानाभ्यासों मार्ग पर आरूढ़ हो मार के बंधन से मुक्त हो जाते हैं ।

सभी चीजें दुःख के कारण हैं, इस बात को जब प्रज्ञा ने देखा लेता है तब दुःखमय ससार से उसे विरक्ति हो जाती है। विशुद्धि का यही मार्ग है।

२७९—सत्त्वे धम्मा अनत्ता 'ति यदा पञ्जाय पस्सति ।

अथ निव्विन्दति दुक्खे एस मम्मो विसुद्धिया ॥ ७ ॥

(सर्वे धर्मा अनात्मान इति यदा प्रज्ञया पश्यति ।

अथ निर्विन्दति दुःखानि परं मार्गो विशुद्धये ॥ ७ ॥)

सभी स्थितियाँ असार हैं, इस बात को जब प्रज्ञा से देखा लेता है तब दुःखमय ससार से उसे विरक्ति हो जाता है। विशुद्धि का यही मार्ग है।

वेत्थन

(योगी) वित्त (धर)

२८०—उत्थानकालहि अनुट्ठहानो युवा बली आलसियं उपेतो ।

ससन्नसद्दुप्पमनो कुसीतो पञ्जाय ममं अलसो न विन्दति ॥ ८ ॥

(उत्थानकालेऽनुत्तिष्ठन् युवा बली आलस्यमुपेतः ।

संसन्न-सकल्प-मनाः कुसीदः

प्रज्ञया मार्गं अलसो न विन्दति ॥ ८ ॥)

युवा और बलवान होते हुए भी जो आलस्य में पड़ उद्योग करने के भक्तर पर उद्योग नहीं करता वह उच्च भावार्थियों से होकर विवेक आलस्य प्रज्ञा के मार्ग को प्राप्त नहीं करता।

एवगृह (वेत्थन)

(गृह प्रेत)

२८१—वाचानुरक्खी मनसा सुमंभुता

कायेन च अकुसलं न कपिता

एते तयो कम्मपथे विसोधये

आराधये मग्गामिसिप्पवेदितं ॥९॥

(वाचाऽनुरक्ता मनसा सुसंवृतः

कायेन चाऽकुशल न कुर्यात् ।

एतान् त्रीन् कर्मपथान् विशोधयेत्,

आराधयेत् मार्गं ऋषिप्रवेदितम् ॥९॥)

वाशों का संयम करे, मन का संयम करे, और शरीर से कोई पाप न करे । (मन, वचन, काय) इन तीनों कर्म-पथों को शुद्ध करे । बुद्ध के बताये मार्ग का अनुसरण करे ।

(वनं छिन्धि मा वृत्तं वनतो जायते भयम् ।

छित्त्वा वनं च वनथं च निर्वाणा भवत भिक्षवः ॥११॥)

२८४—यावं हि वनथो न छिज्जति अनुमत्तोपि नरस्स नारिसु ।

पटिवद्धमनो नु ताव सो वच्छो खौरपको 'व मातरि ॥ १२ ॥

(याद्यद्धि वनथो न छिद्यतेऽणुमात्रोऽपि नरस्य नारीषु ।

प्रतिबद्धमनाः नु तावत् स वत्सः खौरप इव मातरि ॥१२॥

वन को काटो, वृत्त को मत, वन से भय उत्पन्न होता है । ॐ भिक्षुओ ! वन और भाड़ी को काटकर निर्वाण को प्राप्त हो जाओ । जबतक अणुमात्र भी स्त्री में पुरुष की कामना अखण्डित रहता है, तबतक दूध पीनेवाला बड़ड़ा जैसे माता में आश्रय रहता है, वैसे ही वह पुरुष तथा रहता है ।

जेतवन

सुवयणकार (थेर)

२८५—उच्छिन्द सित्तेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं 'व पाणिना ।

सन्तिमग्गमेव ब्रूह्य निब्बानं सुगतेन देसितं ॥ १३ ॥

(उच्छिन्धि स्नेहमात्मनः कुमुदं शारदिकमिव पाणिना ।

शान्तिमार्गमेव ब्रूह्य निर्वाणं सुगतेन देसितम् ॥ १३ ॥)

हाथ से शरद (फूल) के कुमुद की भाँति, आत्मस्नेह को उच्छिन्न कर डालो । सुगत (= बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट (इस) शान्तिमार्ग निर्वाण का प्राश्रय लो ।

जेतवन

(महापनी वटिक)

२८६—इध वस्सं वसिहसामि इध हेमन्तगिम्हसु ।

इति बालो विचिन्तेति अन्तरायं न बुज्जति ॥ १४ ॥

(इह वर्षासु वसिष्यामि इह हेमन्तग्रीष्मयोः ।

इति बालो विचिन्तयति, अन्तरायं न बुध्यते ॥ १४ ॥)

यहाँ वर्षा में वसूँगा, यहाँ हेमन्त और ग्रीष्म में (वसूँगा)
—मूढ़ इस प्रकार सोचता है । (बीच के) अन्तराय (= विषों) को
नहीं बुझता ।

वेदान

किमा गोमती (धेर)

२८७— तं पुत्रपशुसम्मतं व्यासक्तमनसं नरं ।

कुत्रं ग्रामं महोद्यो 'व मच्चृ आदाय गच्छति ॥ १५ ॥

(तं पुत्र-पशु-सम्मतं व्यासक्तमनसं नरम् ।

सुप्तं ग्रामं महोद्य इव मृत्युरादाय गच्छति ॥ १५ ॥)

सोने गोत्र को जैसे बड़ी चाड़ (बड़ा सेजाये), वैसे ही पुत्र और
पशुमें निरत आसक्त पुरुष को मृत ले जाता है ।

२८९—एतमत्थवसे अत्त्वा पण्डितो सीलसंवृतो ।

निव्वारण-गमनं मगं खिप्पमेव विसोधये ॥१७॥

(एतमर्थवशं ज्ञात्वा पण्डितः शीलसंवृतः ।

निर्वाणगमनं मार्गं क्षिप्रमेव विशोधयेत् ॥ १७ ॥)

इस बातको जानकर पण्डित (नर) शीलवान हो, निर्वाण की ओर
 चलेजानेवाले मार्ग को शीघ्र ही साफ करे ।

भद्रियनगर (जातिवाहन)

भद्रिय (भिद्रु)

२९२—यं हि किञ्चं तदपविद्धं अकिञ्चं पन कथिरति ।

उन्नलानं पमत्तानं तेसं बद्धन्ति आसवा ॥ ३ ॥

(यदि कृत्यं तद् अपविद्धं, अकृत्यं पुनः क्रियते ।

उन्नलानां प्रमत्तानां तेषां बद्धन्ति आसवाः ॥ ३ ॥)

२९३—येसञ्च सुसमारद्धा निच्चं कायगता सति ।

अकिञ्चन्ते न सेवन्ति किञ्चे सातच्चकारिनो ।

सत्तानं सम्प्रजानानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥ ४ ॥

(येषाञ्च सुसमारद्धा नित्यं कायगता स्मृतिः ।

अकृत्यं ते न सेवन्ते कृत्ये सातत्यकारिणः ।

स्मरतां सम्प्रजानानां अस्तं गच्छन्त्यासवाः ॥ ४ ॥)

जो कर्तव्य है, उसे (तो वह) छोड़ता है, जो अकर्तव्य है उसे करता है । ऐसे बड़े मलवाले प्रमादियों के आसव (=चित्तमल) बढ़ते हैं । जिन्हे काया में (चणभगुरता, मलिनता आदि दोष सम्यग्धी) स्मृति छ उपस्थित रहती है, वह अकर्तव्य को नहीं करते, और कर्तव्य के निरन्तर करनेवाले होते हैं । जो स्मृति और सम्प्रजन्य (=सचेतपन) को रखनेवाले होते हैं, उनके आसव अस्त हो जाते हैं ।

वेतवन

लकृण्टक मरिय (धेर)

२९४—मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च स्वत्तिये ।

रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनियो याति ब्राह्मणो ॥ ५ ॥

(मातरं पितरं हत्वा राजानो द्वौ च स्वत्तियौ ।

राष्ट्रं साऽनुचरं हत्वाऽनयो याति ब्राह्मणः ॥ ५ ॥)

माता (= नृप्या), पिता (= अहंकार), दो चत्रिय राजाओं (= शाश्वत दष्टि और उच्छेद दष्टि), और अनुचर के साथ सारे राष्ट्र (= संसार की सारी आसक्तियों) को मारकर ब्राह्मण (= ज्ञानी) निष्पाप होता है ।

२९.५—मातरं पितरं हन्वा राजानो द्वे च सोत्रिये ।

वेय्यत्रपञ्चमं हन्वा अनिवो याति ब्राह्मणो ॥ ६ ॥

(मातरं पितरं हत्वा राजानो द्वौ च श्रोत्रियौ ।

व्यात्रपञ्चमं हत्वाऽनवो याति ब्राह्मणः ॥ ६ ॥)

माता, पिता, दो चत्रिय राजाओं को (= शाश्वत दष्टि और उच्छेद दष्टि) और पाँचों नीचरणों को मार कर ब्राह्मण निष्पाप हो जाता है ।

राजगृह (वेणुवन)

(दास्ताकडिकपुच)

२९.६—सुप्पबुद्धं पबुञ्जन्ति सदा गौतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च निच्चं बुद्धगता सति ॥७॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावकाः ।

येषां दिवा च रात्रौ च नित्यं बुद्धगता स्मृतिः ॥७॥)

दिन और रात सदैव बुद्ध के मुखानुस्मरण में जो लीन रहते हैं वे गौतम के शिष्य नित्य बुद्ध का स्मरण करते उत्थे हैं ।

२९.७—सुप्पबुद्धं पबुञ्जन्ति सदा गौतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति ॥ ८ ॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमश्रावकाः ।

येषां दिवा च रात्रौ च नित्यं धर्मगता स्मृतिः ॥८॥)

दिन और रात सदैव धर्म के गुणानुस्मरण में जो लोग रहते हैं वे गौतम के शिष्य नित्य बुद्ध का स्मरण करते उठते हैं ।

२९८—सुप्पबुद्धं पवुज्झन्ति सदा गौतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च निच्चं सङ्घगता सति ॥९॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गौतमसावकाः ।

येषां दिवा च रात्रौ च निर्यं संघगता स्मृतिः ॥९॥)

दिन और रात सदैव सब के गुणानुस्मरण में जो लोग रहते हैं वे गौतम के शिष्य नित्य बुद्ध का स्मरण करते उठते हैं ।

२९९—सुप्पबुद्धं पवुज्झन्ति सदा गौतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च निच्चं कायगता सति ॥१०॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्येन्ते० ।० नित्यं कायगता स्मृतिः ॥१०॥)

दिन और रात सदैव काया का गंदगियों के स्मरण में जो लोग रहते हैं वे० ।

३००—सुप्पबुद्धं पवुज्झन्ति सदा गौतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च अहिंसाय रतो मनो ॥११॥

(सुप्रबुद्धं० ।०अहिंसायां रतं मनः ॥११॥)

दिन और रात सदैव जिनका मन अहिंसा में रत है वे० ।

३०१—सुप्पबुद्धं पवुज्झन्ति सदा गौतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च भावनाय रतो मनो ॥ १२ ॥

(सुप्रबुद्धं० ।०भावनायां रतं मनः ॥ १२ ॥)

दिन और रात सदैव जिनका मन ध्यानाभ्यास में रत है वे० ।

वैशाली (महावना)

बज्जिपुत्तक (भिज्जु)

३०२—दुप्पव्वज्जं दुरभिरमं दुरावासा घरा दुखा ।

दुक्खोऽसमानसंवासो दुक्खानुपतितद्धगू ।

तस्मा न च अद्धगू सिया न च दुक्खानुपतितो सिया ॥१३॥

(दुष्प्रव्रज्यां दुरभिरामं दुरावासं गृहं दुःखम् ।

दुःखोऽसमानसंवासो दुःखाऽनुपतितोऽध्वगः ।

तस्मान्न चाऽध्वगः स्यान्न च दुःखाऽनुपतितः स्यात् ॥१३॥)

दुरी तरह ग्रहण की गई प्रव्रज्या के जीवन में रमण करना कठिन है, न रहने योग्य घर में रहना दुखद है, जो मनुष्य अनुकूल नहीं हैं उनके साथ निवास करना दुखद है, संसार के मार्ग में न पड़े, दुख में न पड़े ।

जेतवन

चित्त (गृहपति)

३०३—सद्धो सीलेन सग्गन्नो यसोभोगसमप्पितो ।

यं यं पदेसं भजति तत्थ तत्थेव पूजितो ॥ १४ ॥

जेतवन

(चुल्ल) सुमदा

३०४—दूरे सन्तो पकासेन्ति हिमवन्तो 'व पव्वता ।

असन्तेत्थ न दिस्सन्ति रत्तिखित्ता यथा सरा ॥ १५ ॥

(दूरे सन्तः प्रकाशन्ते हिमवन्त इव पर्वताः ।

असन्तोऽत्र न दृश्यन्ते रात्रिक्षिता यथा शराः ॥१५॥)

सन्त (जन) दूर होने पर भी हिमालय पर्वत (की) ध्वज चोटियों की भाँति प्रकाशते हैं, और असन्त यहाँ (पास में भी) होने पर, रात में फेंके बाण की भाँति नहीं दिखलाई देते ।

नेतयन

अक्रेने विहरने वाले (धेर)

३०५—एकासनं एकसेय्यं एको चरमतन्दितो ।

एको दमयमत्तानं वनन्ते रमितो सिया ॥ १६ ॥

(एकासन एकशय्य एकश्चरघ्नतन्द्रितः ।

एको दमयन्नात्मानं वनान्ते रतः स्यात् ॥ १६ ॥)

एक ही आसन रखने वाला, एक शय्या रखने वाला, अकेला विचरने वाला (वन), आलस्य रहित हो, अपने को दमन कर अकेला ही वनान्त में रमण करे ।



२२—निरयवग्गो

नेतवन

सुन्दर (परित्रौजिका)

३०६—अभूतवादी निरयं उपेति यो वापि
 कत्वा 'न करोमी' ति चाह ।
 उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति
 निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥१॥

(अभूतवादी निरयमुपेति,
 यो वाऽपि कृत्वा न करोमी' ति चाह ।
 उभावपि तौ प्रेत्य समौ भवतो
 निहीनकर्माणौ मनुजौ परत्र ॥ १ ॥)

असत्यवादी नरक में जाते हैं, और वह भी जो कि करके 'नहीं किया'—कहते । दोनों ही प्रकार के नीचकर्म करने वाले मनुष्य मरकर समान होते हैं ।

राजगृह (वेणुवन)

(पाप फलानुभवी प्रार्थी)

३०७—कासावकण्ठा बहवो पापधम्मा असब्बता ।
 पापा पापेहि कम्मेहि निरयन्ते उप्पज्जेरे ॥२॥

(काषायकंठा बहवः पापधर्मा असंयताः ।

पापाः पापैः कर्मभिनिरयं त उत्पद्यन्ते ॥ २ ॥)

कंठ में काषाय (वस्त्र) बाँधे कितने ही पापों असंयमी हैं; जो पापों (अपने) पाप कर्मों से नरक में उत्पन्न होते हैं ।

वैशाला

(बग्गमुदातीरवासी निघ्न)

३०८—सेरयो अयोगुलो भुत्तो ततो अग्गिसिखूपमो ।

यञ्चे भुज्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असज्जतो ॥३॥

(श्रेयान् अयोगोलो भुक्तस्तप्तोऽग्निशिखोपमः ।

यच्चेद् भुञ्जीत दुःशीलः राष्ट्रपिण्डं असंयतः ॥३॥)

असंयमी दुराचारी हो राष्ट्रका पिण्ड (= देश का भण्ड) खाने से अग्निशिखा के समान तप्त जोड़े का गोब्रा खाना उचित है ।

जेतवन

खेम (धेष्ठीपुत्री)

३०९—चत्तारि स्थानानि नरो पमत्तो आपज्जती परदारूपसेवी ।

अपुण्यलाभं न निकामसेय्यं निन्दंतीत्यं निरयं चतुर्थं ॥४॥

(चत्वारि स्थानानि नरः प्रमत्त आपद्यते परदारोपसेवो ।

अपुण्यलाभं न निकामशय्यां

निन्दां तृतीयां निरयं चतुर्थम् ॥ ४ ॥)

३१०—अपुण्यलाभो च गतो च पापिका,

भीतस्स भीताय रती च थोऽरुक्का ।

राजा च दण्डं गुरुं पणेति

उस्मा नरो परदारं न सेवे ॥ ५ ॥

(अपुण्यलाभश्च गतिश्च पापिका ,
भीतस्य भीतया रतिश्च स्तोत्रिका ।
राजा च दण्डं गुरुकं प्रणयति
तस्मात् नरः परदारान् न सेवेत ॥५॥)

प्रमादी परस्त्रीगामी मनुष्य की चार गतियाँ हैं—अपुण्य का लाभ सुखसे न निद्रा, तीसरे निन्दा, और चौथे नरक । (अथवा) अपुण्य लाभ, बुरी गति, भयभीत (पुरुष) की भयभीत (स्त्री) से अत्यन्त रति, और राजा का भारी दण्ड देना । इसलिये मनुष्य को परस्त्रीगमन न करना चाहिये ।

जेतवन

कडुभाषी (मित्र)

३११—कुशो यथा दुग्गहीतो हत्थमेवानुकन्तति ।
सामञ्जं दुप्परामट्ठं निरयायउपकड्ढति ॥६॥
(कुशो यथा दुग्घृहीतो हस्तमेवाऽनुकन्तति ।
श्रामण्यं दुप्परामृष्टं निरयायोपकर्षति ॥ ६ ॥)

जैसे ठीक से न पकड़ने से कुश हाथ को ही काट देता है, (इसी प्रकार) श्रवणपन (= संन्यास) ठीक से ग्रहण न करने पर नरक में ले जाता है ।

३१२—यं किञ्चि सिथिलं कम्मं संक्खिलिट्ठं च यं वतं ।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं न तं होति महप्फलं ॥७॥

(यत् किञ्चित् शिथिलं कर्म संक्लिष्टं च यद् व्रतम् ।
संकुच्छ्रं ब्रह्मचर्यं न तद् भवति महत्फलम् ॥ ७ ॥)

जो कर्म की शिथिलता है, जो व्रत क्लेश (=मल)—युक्त है, और जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध है, वह महाफल (=दायक) नहीं होता ।

३१३-कथिराञ्चे कथिराथेनं दल्लहमेनं परकमे ।

सिथिलो हि परिव्राजो भिय्यो आकिरते रजं ॥ ८ ॥

(कुर्याच्चेत् कुर्वतैतद् दृढमेतत् पराक्रमेत् ।

शिथिलो हि परिव्राजको भूय आकिरते रजः ॥ ८ ॥)

यदि (प्रमज्या कर्म) करना है, तो उसे करे, उसमें दृढ़ पराक्रमके साथ लग जावे; ढीला ढाला परिव्राजक (= संन्यासी) अधिक मल विखेरता है ।

नेतवन

(कोई ईष्यालु स्त्री)

३१४-अकतं दुक्कतं सेय्यो पच्छा तपति दुक्कतं ।

कतञ्च सुकतं सेय्यो यं कत्त्वा नानुत्पपति ॥ ९ ॥

(अकृतं दुष्कृतं श्रेयः पश्चात् तपति दुष्कृतम् ।

कृतं च सुकृतं श्रेयो यत् कृत्वा नानुत्पपति ॥ ९ ॥)

दुष्कृत (= पाप) का न करना श्रेष्ठ है, दुष्कृत करनेवाला पापोंके अनुताप करता है । सुकृत का करना श्रेष्ठ है, जिसको करके (मनुष्य) अनुताप नहीं करता ।

नेतवन

बहुवक्षे भिष्टु

३१५-नगरं यथा पच्चन्तं गुत्तं सन्तरवाहिरं ।

एवं गोपेथ अत्तानं सणो वे मा उपच्चगा ।

क्षणातीता हि सोचन्ति निरयद्धि समप्पिता ॥ १० ॥

(नगरं यथा प्रत्यन्तं गुप्तं सान्तरवाहिरम् ।

एवं गोपयेद्वात्मानं क्षणं वै मा उपातिगाः ।

क्षणातीता हि शोचन्ति निरये समप्पिताः ॥ १० ॥)

सीमान्त का नगर जिस प्रकार भीतर बाहर से खूब रक्षित होता है उसी प्रकार अपने को संयत रखे । अवसर न चूके । अवसर चूक जाने से नरक में पड़ कर शोक करता है ।

जेतवन

(जैनसाधु)

३१६—अलज्जिता ये लज्जन्ति लज्जिता ये न लज्जेरे ।

मिच्छादिद्विष्टसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुर्गतिं ॥ ११ ॥

(अलज्जिता ये लज्जन्ते लज्जिता ये न लज्जन्ते ।

मिथ्याद्विष्टसमादानात् सत्त्वा गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥११॥)

लज्जा न करने के स्थान में जो लज्जित होते हैं, और लज्जा करने के स्थान में लज्जित नहीं होते—वे जीव मिथ्या-धारणा ग्रहण करने के कारण दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

३१७—अभये च भयदस्सिनो भये च अभयदस्सिनो ।

मिच्छादिद्विष्टसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुर्गतिं ॥ १२ ॥

(अभये च भयदर्शिनो भये चाऽभयदर्शिनः ।

मिथ्याद्विष्टसमादानात् सत्त्वा गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥१२॥)

भय न करने के स्थान में भय देखते हैं, और भय करने के स्थान में भय नहीं करते—वे जीव० ।

जेतवन

(तीर्थिक-शिष्य)

३१८—अवज्जे वज्जमतिनो वज्जे चावज्जदस्सिनो ।

मिच्छादिद्विष्टं ॥१३॥

(अवद्ये वद्यमतयो वद्ये चाऽवद्यदर्शिनः ।
मिथ्यादृष्टि० ॥१३॥)

अनिन्दनीय बात में दोष देखते हैं, और निन्दनीय बात में दोष नहीं देखते वे जात्र० ।

३१९-वज्जञ्च वज्जतो जत्वा अ्रवज्जञ्च अवज्जतो ।

सम्भादिदृष्टिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुमार्ति ॥ १४ ॥

(वद्यं च वद्यतो ज्ञात्वाऽवद्यं चावद्यतः ।

सम्यग्दृष्टिसमादानात् सत्त्वा गच्छन्ति सु गतिम् ॥१४॥)

निन्दनीय बात को निन्दनीय, और अनिन्दनीय बात को अनिन्दनीय बात को अनिन्दनीय जान सम्यक्दृष्टि धारण करके प्राणी सुगति को प्राप्त होते हैं ।



२३—नागवग्गो

नेनवन

आनन्द (थेर)

३२०—अहं नागो'व सङ्गामे चापतो पतितं सरं ।

अतिवाक्यं तित्तिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ॥ १ ॥

(अहं नाग इव संग्रामे चापतः पतितं शरम् ।

अतिवाक्यं तित्तिक्खिष्ये. दुःशीला हि बहुजनाः ॥ १ ॥)

युद्ध में जैसे हाथी धनुष से छोड़े बाणों को सहन करता है वैसे ही मैं कटु वाक्यों को सहन करूँगा । संसार में दुःशील लोग ही अधिक हैं ।

३२१—दन्तं नयन्ति समितिं दन्तं राजाभिरूहति ।

दन्तो स्सेट्ठो मनुस्सेसु यो'तिवाक्यं तित्तिक्खति ॥२॥

(दान्तं नयन्ति समितिं दान्तं राजाऽभिरोहति ।

दान्तः श्रेष्ठो मनुष्येषु योऽतिवाक्यं तित्तिक्खते ॥ २ ॥)

दान्त कर लिये गये (हाथी) को युद्ध में ले जाते हैं, वैसे ही हाथी पर राजा चढ़ता है । अपने को जिसने दमन कर लिया है वही मनुष्यों में श्रेष्ठ है, जो दूसरों के कटु वाक्यों को सहन करता है ।

३२२—वरं अस्सतरा दन्ता आजानीया च सिन्धवा ।

कुञ्जरा च महानागा अत्तदन्तो ततो वरं ॥ ३ ॥

(वरमश्वतरा दान्ता आजानीयाश्च सिंधवः ।

कुजराश्च महानागा आत्मदान्तस्ततो वरम् ॥ ३ ॥)

खच्चर, अच्छी जाति के घोड़े और महा नाग हाथी दान्तकर लिये जाने पर अच्छे होते हैं । जिसने अपने को दमन कर लिया है वह सबसे अच्छा है ।

श्वेतवन

(भूतपूर्व महावत मित्र)

३२३-नहि एतेहि यानेहि गच्छेय्य अगतं दिस ।

यथाऽत्तना सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति ॥ ४ ॥

(नहि एतैर्यानैः गच्छेद्गतां विशम् ।

यथा ऽऽत्मना सुदान्तेन दान्तो दान्तेन गच्छति ॥०॥)

इन यानों से कोई निर्वाण की ओर नहीं जा सकता । अपने को जिसने दमन कर लिया है वही सुदान्त वहाँ पहुँच सकता है ।

श्वेतवन

(परिनिर्वाण ब्राह्मणपुत्र)

३२४-धनपालको नाम कुञ्जरो कटकप्रभेदनो दुर्निवारयो ।

धद्रो कवलं न भुञ्जति सुमरति नागवनस्स कुञ्जरो ॥ ५ ॥

(धनपालको नाम कुञ्जरो कटकप्रभेदनो दुर्निवार्यः ।

धद्रः कवलं न भुंक्ते, स्मरति नागवनं कुञ्जरः ॥ ५ ॥)

धनपालक नाम का हाथी, सेना को तितर बितर कर देनेवाला, अत्यन्त दुर्दुर्षं बन्धन में पड़ जाने पर प्रास नहीं खाता । वह हाथियों के जगल को स्मरण करता है ।

श्वेतवन

पठेनदी (कोरावराज)

३२५-मिद्धी यदा होति महग्घसो च निद्दायिता सम्परिवत्तसायी ।

महाचराहो 'व निवापपुट्ठो पुनप्पुनं गन्धमुपेति मन्तो ॥६॥

(मृच्छो यदा भवति महावसश्च निद्रायितः सपरिवर्तशायी ।
महावराह इव निवाप-पुष्टः पुनः पुनः गर्भमुपैति मन्दः ॥६॥)

आलसी, बहुत खाने वाला, निद्रालु, करवट बदल-बदल कर सोने वाला, खिला-पिला कर पुष्ट किये मोटे सूअर की तरह,—मन्द वार-वार गर्भमें पड़ता है ।

जेतवन

(सामणेर)

३२६-इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं

येनिच्छकं यत्थ कामं यथासुखं ।

तदज्ज 'हं निग्गहेस्सामि योनिसो

हत्थिप्पभिन्नं विय अङ्कुसग्गहो ॥७॥

(इदं पुरा चित्तमचरत् चारिकां

यथेच्छं यथाकामं यथासुखम् ।

तदद्याऽहं निग्रहीष्यामि योनिशो

हस्तिनं प्रभिन्नमिवाङ्कुशग्राहः ॥७॥)

पहले यह चित्त मनमाना जिधर चाहा उधर स्वच्छन्द जाता रहा,
उसे आज मैं अच्छी तरह अपने बस में लाऊँगा—अङ्कुश ग्रहण करने
वाला जैसे भड़के हाथी को ।

जेतवन

कोसलराजका पावेव्यक नामक हाथी

३२७-अप्रमादरता होथ स-चित्तमनुरक्खथ ।

दुग्गा उद्धरथ'चानं पङ्के सत्तो'व कुञ्जरो ॥८॥

(अप्रमादरता भवत स्वचित्तमनुरक्षत ।

दुर्गादुद्धरताऽऽत्मानं पङ्के सक्त इव कुञ्जरः ॥ ८ ॥)

अप्रमाद में रत हौओ, अपने चित्त की रक्षा करो । इस कठिन संसार से अपना उद्धार करो—पङ्क में कैसे हार्था की तरह ।

पारिलेख्यक

बहुत से भिदु

३२८—सचे लभेथ निपकं सहायं

सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं ।

अभिभुय्य सन्वानि परिस्रयानि

चरेय्य तेन'चमनो सतोमा ॥ ९ ॥

(स चेत् लभेत निपक्यं सहायं

साद्धं चरन्तं साधुविहारिणं धीरम् ।

अभिभूर्य सर्वान् परिश्रयान्

चरेत् तेनाऽऽचमनाः स्मृतिमान् ॥९॥)

यदि साथ विचरण करने वाला अनुकूल पण्डित मित्र मिल जाए तो सभी विघ्नों को दूर कर उसके साथ स्मृतिमान और प्रसन्न होकर विहार करे ।

३२९—नो चे लभेथ निपकं सहायं

सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं ।

राजा 'व रट्टं विजितं प्रहाय

एका चरे मानङ्ग 'रञ्जेव नागो ॥ १० ॥

(न चेत् लभेत निपक्यं सहायं

साद्धं चरन्तं साधुविहारिणं धीरम् ।

राजेथ राष्ट्रं विजितं प्रहाय,

एकधरेत् मातंगोऽरण्य इव नागः ॥१०॥)

यदि साथ विचरण करने वाला अनुकूल पण्डित मित्र न मिले तो—
पराजित राष्ट्र को छोड़ राजा की भाँति—हस्तिराज के समान अकेला
विचरण करे ।

३३०—एकस्स चरितं सेय्यो नत्थि वाले सहायता ।

एको चरे न च पापानि कयिग

अप्पोस्सुक्को मातङ्ग 'रञ्जे'व नागो ॥११॥

(एकस्य चरितं श्रेयो नाऽस्ति वाले सहायता ।

एकश्चरेत् न च पापानि कुर्याद्

अल्पोत्सुको मातंगोऽरण्य इव नागः ॥११॥)

अकेला रहना उत्तम है । मूर्ख के साथ मित्रता अच्छी नहीं । अकेला
विचरे, पाप न करे । हस्तिराज की तरह अनुत्सुक होकर रहे ।

हिमवत्-प्रदेश

भार

३३१—अत्थमिह जातमिह सुखा सहाया

तुट्ठी सुखा या इतरीतरेण ।

पुञ्जं सुखं जीवितसंखयमिह

सव्वस्स दुक्खस्स सुखं प्रहाणं ॥ १२ ॥

(अर्थे जाते सुखाः सहायाः, तुष्टिः सुखा येतरेतरेण ।

पुण्यं सुखं जीवितसंक्षये सर्वस्यदुःखस्य

सुखं प्रहाणम् ॥ १२ ॥)

काम पढ़ने पर मित्रों का होना सुखकर है । जो मिले उससे सन्तुष्ट
रहना सुख है । मृत्यु के उपरान्त पुण्य सुख है । सभी दुःखों का प्रहाण
सुख है ।

३३२—सुखा मतेय्यता लोके अथो पेतेय्यता सुखा ।

सुखा सामञ्जता लोके अथो ब्रह्मञ्जता सुखा ॥ १३ ॥

(सुखा माघ्रीयता लोकेऽथ पिघ्रीयता सुखा ।

सुखा धमणता लोकेऽथ ब्राह्मणता सुखा ॥ १३ ॥)

ससार में माता और पिता का सेवा सुखकर है । धमणभाव (= सन्यास) सुखकर है, और ब्राह्मणभाव (= निष्पाप होना) भी सुखकर है ।

३३३—सुखं याप जरा शीलं सुखा सदा पतिट्ठिता ।

सुखो पञ्जाय पटिलाभो पापानं अकरणं सुखं ॥ १४ ॥

(सुखं यावद् जरां शीलं सुखा श्रद्धा प्रतिष्ठिता ।

सुखः प्रज्ञाया प्रतिलाभ पापाना अकरणं सुखम् ॥ १४)

बूढ़ावस्था तक शील का पालन सुखकर है, स्थिर श्रद्धा का होना सुखकर है । ज्ञान का लाभ करना सुखकर है । पापों का न करना सुखकर है ।

२४—तरहावग्गो

जेतवन

कपिलमच्छ

३३४—मनुजस्स पमत्तचारिनो तण्हा वड्ढति मालुवा विय ।

सो पलवती हुराहुरं फलमिच्छं 'व । वनस्मिं वानरो ॥१॥

(मनुजस्य प्रमत्तचारिणः तृष्णा वर्द्धते मालुवेव ।

स प्लवतेऽहरहः फलमिच्छन् इव वने वानरः ॥ १ ॥)

प्रमत्त होकर विचरण करने वाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा लता की भांति बढ़ती है । जंगल में फल की इच्छा से कूद-फांद करते वानर की तरह जन्मजन्मान्तर में भटकता रहता है ।

३३५—यं एसा सहती जग्गी तण्हा लीके विसत्तिका ।

सोका तस्स पवड्ढन्ति अभिवट्ठं 'व वीरणं ॥२॥

(यं एसा साहयति जाल्मी तृष्णा लोके विषात्मिका ।

शोकास्तस्य प्रवर्द्धन्तेऽभिवृष्टं इव वीरणम् ॥ २ ॥)

यह विष रूगी नीच तृष्णा जिसे अभिभूत कर देती है उसके शोक वर्षाकाल में वीरण तृण की भांति वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।

३३६—यो चेतं सहती जग्मिं तण्हं लोके दुरच्चयं ।

सोका तथा पपतन्ति उद्विन्दू 'व पोक्खरा ॥ ३ ॥

(यश्चैतां साहयति जाल्मो वृष्णां लोके दुरत्ययाम् ।

शोकाः तस्मात् प्रपतन्त्युद्विन्दुरिव पुष्करात् ॥ ३ ॥)

जो संसार में इस दुस्व्याज्य नीच वृष्णा को जीत लेता है, उसके शोक उस तरह गिर जाते हैं जैसे कमल के ऊपर से जल के बिन्दु ।

३३७—तं वो वदामि भद्रं वो यावन्तेत्थ समागता ।

तण्हाय मूलं खण्णथ उसीरत्थो 'व वीरणं ॥ ४ ॥

मा वो नलं व सोतो व मारो भञ्जि पुनप्पुनं ॥ ४ ॥

(तद् वो वदामि भद्रं वो यावन्त इह समागताः ।

वृष्णाया मूलं खनतोशीरार्थीव वीरणम् ॥ ४ ॥)

इसलिए मैं तुम्हें, जितने यहाँ आये हुए हैं, तुम्हारे कल्याण के लिए कहता हूँ । वृष्णा की जड़ को खोदो, खस के लिए वीरण घास की तरह । जलधारा जैसे सरकड़े को बार-बार उखाड़ बालती है, वैसे मार तुम्हें न करे ।

जेतवन

गूय-गूकर पोटिक

३३८—यथापि मूले अनुपद्दवे दल्ल्हे

छिन्नोपि ल्यलो पुनरेव रूहति ।

एवमि तण्हानुसये अनुद्दते

निञ्जत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुन ॥ ५ ॥

(यथाऽपि मूलेऽनुपद्दवे दद्वे छिन्नोऽपि वृक्षः पुनरेव रोहति ।

एवमपि वृष्णाऽनुसयेऽनिहते निर्घर्तते दुःखमिदं पुनः पुनः ॥ ५ ॥)

जैसे दृढमूल के विलकुल नष्ट न हो जाने से कटा हुआ वृक्ष फिर भी बढ़ जाता है, वैसे तृष्णा और अनुशय के समूल नष्ट न होने से यह दुःख-चक्र बार-बार प्रवर्तित होता रहता है ।

३३९—यस्स छत्तिंसती सोता मनापस्सवना भुम्भा ।

वाहा वहन्ति दुद्धिट्ठि सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥ ६ ॥

(यस्य पटत्रिंशत् स्रोतांसि मनापश्रवणानि भूयासुः ।

वाहा वहन्ति दुर्दृष्टि संकल्पा रागनिःसृताः ॥ ६ ॥)

जिसके छत्तीस श्रोत संसार में प्रिय पदार्थों की ओर अत्यन्त प्रवाहित होते हैं उसके राग पूर्ण संकल्प उसे दुर्दृष्टि की ओर बहा ले जाते हैं ।

३४०—सवन्ति सव्वन्नि सोता लता उन्निज्ज तिष्ठति ।

तच्च दिस्वा लतं जातं मूलं पव्वाय छिन्दथ ॥ ७ ॥

(स्रवन्ति सर्वतः स्रोतांसि लता उद्भिद्य तिष्ठति ।

तां च दृष्ट्वा लतां जातां, मूलं प्रज्ञया छिन्दत ॥ ७ ॥)

यह स्रोत सभी ओर बहते हैं । लता फूट कर निकलती है । उस उगी लता को देख उसके मूल को प्रज्ञा से काट डालो ।

३४१—सरितानि सिनेहितानि च सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो ।

ते सोतसिता सुखेसिनो ते वे जाति-जरूपगा नरा ॥ ८ ॥

(सरितः स्निग्धाश्च सौमनस्या भवन्ति जन्तोः ।

ते स्रोतःसृताः सुखैषिणस्ते वै जातिजरोपगा नराः ॥ ८ ॥)

तृष्णा की धारयें प्राणियों को बड़ी प्रिय और मनोहर लगती हैं। सुख के फेर में पड़े उसकी धारा में पड़ते हैं और बार बार जन्म जरा के चक्र में आते हैं । ❀

३४२-तसिणाय पुरस्खता पजा परिसप्पन्ति ससो 'व वाधितो ।
सञ्जोजनसङ्गसत्ता दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय ॥ ९ ॥

(तृष्णया पुरस्कृता प्रजा' परिसर्पन्ति शश इव बद्ध. ।
सयोजनसंगसत्ता दुःखमुपेन्ति पुनः पुनः चिराय ॥९॥)

तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी, बंधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं; सयोजनों (= मन के बंधनों) में फँसे लोग पुनः पुनः चिरकाल तक दुःख पाते हैं ।

३४३-तसिणाय पुरस्खता पजा परिसप्पन्ति ससो' व वाधितो ।
तस्मा तसिन विनोदये भिक्खू अरुह्ही विरागमत्ततो ॥१०॥

(तृष्णया पुरस्कृताः प्रजाः
परिसर्पन्ति शश इव बद्ध. ।

तस्मात् तृष्णां विनोदयेद्
भिच्छुटाकाक्षी विरागमात्मनः ॥१०॥

तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी, बंधे, खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं; क्षमलिये वैराग्य की आकांक्षा रख भिक्षु तृष्णा को दूर करे ।

बगुवन

विभक्तक (भिक्षु)

३४४-यो निव्वनथो वनाधिमुत्तो वनमुत्तो वनमेव धावति ।
त पुमत्तमेव पस्सथ मुत्तो वन्धनमेव धावति ॥११॥

(यो निर्वनथो वनाऽधिमुक्तो

वनमुक्तो वनमेव धावति ।

तं पुद्गलमेव पश्यत मुक्तो

बन्धनमेव धावति ॥ ११ ॥

जो सांसारिक बन्धनों से छूट वनवास करता हुआ फिर वन को छोड़ संसार-नृपणा (= वन) की ही ओर जाता है। उस पुरुष को देखो— मुक्त होकर फिर बन्धन की ओर जाता है। ❀

जेतवन

बन्धनागार

३४५—न तं दल्हं बन्धनमाहु धीरा यदायसं दारुजं वव्वजञ्च ।

सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥ १२ ॥

(न तद् दृढं बन्धनमाहुर्धीरा

यद् आयसं दारुजं वव्वजं च ।

सरक्त-रक्ता

मणिकुण्डलेषु

पुत्रेषु दारेषु च याऽपेक्षा ॥ १२ ॥)

(यह) जो लोहे लकड़ी या रस्सी का बन्धन है, उसे बुद्धिमान (जन) दृढ़ बन्धन नहीं कहते। (वस्तुतः दृढ़ बन्धन है जो यह) मणि, कुण्डल, पुत्र स्त्री में इच्छा का होना है।

३४६—एतं दल्हं बन्धनमाहु धीरा

ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं ।

एतग्णि छेत्त्वान परिव्वजन्ति

अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय ॥ १३ ॥

(एतद् दृढं बन्धनमाहुर्धारा

अपहारि शिथिलं दुष्प्रमोचम् ।

एतदपि छित्त्वा परिव्रजन्त्य-

नपेक्षिणः कामसुखं प्रहाय ॥१३॥)

धीर पुरुष इसी को दृढ बन्धन, अपहारक शिथिल और दुस्त्याज्य कहते हैं; (वह) अपेक्षा रहित हो, तथा काम सुखों को छोड़, इस (दृढ) बन्धन को छिन्नकर, प्रमजित होते हैं ।

राजशूद्र (वेणुवन)

खेमा (शिष्यसार-महिषी)

३४७—ये रागरत्नानुपतन्ति स्रोतं सयं कतं मर्कटको व जालं ।

एतन्पि छित्त्वा व्रजन्ति धीरा

अनपेक्षिनो सब्यदुक्खं प्रहाय ॥ १४ ॥

(ये रागरत्ना अनुपतन्ति स्रोतः

स्वर्यकृतं मर्कटक इव जालम् ।

एतदपि छित्त्वा व्रजन्ति धीरा

अनपेक्षिणः सर्घदुखं प्रहाय ॥१४॥)

जो राग में रक्त है, वह जैसे मर्कटी अपने पनाये जाल में पड़ती है, (धैरे ही) अपने पनाये, स्रोत में पड़ते हैं। धीर (पुरुष) इस (स्रोत) को भी घेद कर सारे दु खों को छोड़ भाङ्गपा रहित हो चल देते हैं ।

राजशूद्र (वेणुवन)

उग्गमेन (श्रेष्ठो)

३४८—मुद्य पुरे मुद्य पच्छतो मज्जे मुद्य भयत्स पारमू ।

सन्दत्थ त्तिमुचमानसो न पुन जतिन्नरं उपेक्षिमि ॥ १५ ॥

(मुंच पुरो मुंच पश्चात् मध्ये मुंच भवस्य पारगः ।

सर्वत्र विमुक्तमानसो न पुनः जातिजरे उपैषि ॥१५॥)

आगे पीछे और मध्य की (सभी वस्तुओं को) त्याग दो, (और उन्हें छोड़) भव (सागर) के पार हो जाओ; जिसका मन चारों ओर से मुक्त हो गया, (वह) फिर जन्म और जरा को प्राप्त नहीं होता ।

जेतवन

(चुल्ल) धनुग्गह पंडित

३४९-वितक्कपमथितस्स जन्तुनो तिव्वरागस्स सुभानुपस्सिनो ।

भिय्यो तण्हा पवड्ढति एसो खो दल्हं करोति वन्धनं ॥१६॥

(वितर्क-प्रमथितस्य जन्तोः

तीव्ररागस्य शुभाऽनुदर्शिनः ।

भूयः तृष्णा प्रवर्द्धते एष खलु दृढं करोति वन्धनम् ॥१६॥)

जो प्रार्थी सन्देह से मथित, तीव्र राग से युक्त, सुन्दर ही सुन्दर को देखने वाला है, उसकी तृष्णा और भी अधिक बढ़ती है, वह (अपनेलिष्ट) और भी दृढ़ बन्धन तय्यार करता है ।

३५०-वितक्कूपसमे च यो रतो असुभं भावयति सदा सतो ।

एस खो व्यन्तिकाहिनी एसच्छेच्छति मारवन्धनं ॥ १७ ॥

(वितर्कोपशमे च यो रतो

ऽशुभं भावयते सदा स्मृतः ।

एष खलु व्यन्तीकरिष्यति

एष छेत्स्यति मारवन्धनम् ॥१७॥)

बुरे विचारों के शान्त करने में जो रत है, सचेत रह (जो) अशुभ (दुनिया के ग्रन्धेरे पहलू) की भी सदा भावना करता है, वह मार के बन्धन को छिन्न करेगा, विनाश करेगा ।

जेतवन

मार

३५१-निट्ठङ्गतो असन्तासी वीततण्हो अनङ्गणो ।

उच्छिज्ज भवसल्लानि अन्तिमो'यं समुस्सथो ॥१८॥

(निष्टांगतोऽसंत्रासी वीतवृष्णोऽनंगणः ।

उत्सृज्य भवशल्यानि, अन्तिमोऽयं समुच्छ्रयः ॥१८॥)

जिसके (पाप पुण्य) समाप्त हो गये; जो भ्रास-उत्पादक नहीं है, जो तृष्णारहित और मलरहित है; वह भव के शक्यों को उखाड़ेगा, यह उसका अंतिम देह है ।

३५२-वीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो ।

अक्खरानं सन्निपातं जञ्जा पुब्बापरानि च ।

स वे अन्तिमशारीरो महापञ्चो'त्ति कुच्चति ॥१९॥

(वीतवृष्णोऽनादानो निरुत्तिपदकोविदो ।

अक्षराणां सन्निपातं जानाति पूर्वापरानि च ।

स वे अन्तिमशारीरो महाप्राज्ञ इत्युच्यते ॥१९॥)

जो तृष्णारहित, परिग्रहरहित, भाषा और काव्य का जानकार है; और (जो) अक्षरों के पहिले पीछे रखने को जानता है, वह निश्चय ही अन्तिम शरीर वाला तथा महाप्राज्ञ कहा जाता है ।

बाराणसी से गया के रास्ते में

उपक (याजीवक)

३५३-सब्बाभिमू

सब्बविदूहमस्मि

सब्बेषु धम्मेषु अनुपलितो ।

सब्बज्जहो तप्पक्खये विमुत्तो

सयं अभिञ्जाय कमुद्दिसेम्य ॥ २० ॥

(सर्वाभिभूः सर्वविद्दहमस्मि सर्वेषु धर्मेष्वनुपलितः ।
सर्वजहः तृष्णाक्षये विमुक्तः

स्वयमभिज्ञाय कमुद्दिशेयम् ॥२०॥)

मैं (राग आदि) सभी का परास्त करने वाला हूँ, (दुःख से मुक्ति पाने की) सभी (बातों) का जानकार हूँ, सभी धर्मों (= पदार्थों) में अलिप्त हूँ, सर्वत्यागी, तृष्णा के नाश से मुक्त हूँ, (विमल ज्ञान को) अपने ही जानकर (मैं अब) किसको (अपना गुरु) बतलाऊँ ?

जेतवन

सक देवराज

३५४—सव्वदानं धम्मदानं जिनाति
सव्वं रसं धम्मरसो जिनाति ।
सव्वं रतिं धम्मरती जिनाति
तण्हक्खयो सव्वदुक्खं जिनाति ॥ २१ ॥

(सर्वदानं धर्मदानं जयति
सर्वं रसं धर्मरसो जयति ।
सर्वा रतिं धर्मरतिर्जयति
तृष्णाक्षयः सर्वदुःखं जयति ॥२१॥)

धर्म का दान सारे दानों से बढ़कर है, धर्मरस सारे रसों से प्रबल है, धर्म में रति सब रतियों से बढ़कर है, तृष्णा का विनाश सारे दुःखों को जीत लेता है ।

जेतवन

(अपुत्रक श्रेणी)

३५५—हनन्ति भोगा दुग्मेधं नो चे पारगवेसिनो ।
भोगतण्हाय दुग्मेधो हन्ति अज्जे' व अत्तनं ॥ २२ ॥

(ग्नन्ति भोगा दुर्मैधसं न चेत् पारगवेपिणः ।

भोगवृष्ण्या दुर्मैधा हन्त्यन्य इवात्मनः ॥ २२ ॥)

(ससार को) पार होने की कोशिश न करनेवाले दुर्बुद्धि (पुरुष) को भोग नष्ट करते हैं, भोग की वृष्णा में पड़कर (वह) दुर्बुद्धि पारंग की भोति अपने ही को हनन करता है ।

पाण्डुकम्बलशिला (देवलोक)

भरु

३५६-तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा ।

तस्मा हि वीतरागेषु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २३ ॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि रागदोषेयं प्रजा ।

तस्माद्धि वीतरागेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥ २३ ॥)

खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा (= मनुष्यों) का दोष राग है, इसलिये (दान) वीतराग (पुरुष) को देने में महाफल होता है ।

३५७-तिण्णदोसानि खेत्तानि दोसदोसा अयं पजा ।

तस्मा हि वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २४ ॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि द्वेषदोषेयं प्रजा ।

तस्माद्धि वीतद्वेषेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥ २४ ॥)

खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष द्वेष है, इसलिये वीतद्वेष (= द्वेषरहित) को देने में महाफल होता है ।

३५८-निणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा ।

तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २५ ॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि मोहदोषेयं प्रजा ।

तस्माद्धि वीतमोहेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥२५॥)

खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष मोह है; इसलिये वीतमोह (=मोहरहित) को देने में महाफल होता है ।

३५९.—तिण्णदोसानि खेत्तानि इच्छादासा अयं पजा ।

तस्मा हि विगतिच्छेषु दिन्नं होति महप्फलं ॥२६॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि, इच्छादोषेयं प्रजा ।

तस्माद्धि विगतेच्छेषु दत्तं भवति महाफलम् ॥२६॥)

खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष इच्छा है; इसलिये विगतेच्छ (= इच्छारहित) को देने में महाफल होता है ।



२५—भिक्षुवर्गो

जैनवन

पाँच भिक्षु

३६०—चम्बुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो ।

घाणेन मंवरो साधु साधु जिह्वाय संवरो ॥ १ ॥

(चक्षुषा संवरः साधुः, साधुः श्रोत्रेण संवरः ।

घ्राणेन संवरः साधुः, साधुः जिह्वाया संवरः ॥ १ ॥)

भोज्य का संवर (= संयम) ठीक है, ठीक है कान का संवर, घ्राण (= नाक) का संवर ठीक है, ठीक है जीभ का संवर ।

३६१—कायेन मंवरो साधु, साधु वाचाय संवरो ।

मनसा संवरो साधु साधु सञ्चत्य संवरो ।

सञ्चत्य संवृतो भिक्षु सञ्चदुक्खा पमुच्चति ॥ २ ॥

(कायेन संवरः साधुः साधुः वाचाय संवरः ।

मनसा संवरः साधुः, साधुः मर्षत्र संवरः ।

मर्षत्र संवृतो भिक्षुः मर्षदुःखात् प्रमुच्यते ॥ २ ॥)

वापाका संवर (= संयम) ठीक है, ठीक है पचन का संवर; मन का संवर ठीक है, ठीक है मर्षत्र (इन्द्रियों) का संवर । मर्षत्र मर्यादा-बुद्धि भिक्षु मारे दुःखोंसे छूट जाता है ।

जेतवन

हंसघातक (भिक्षु)

३६२—हृत्थसञ्जतो पादसञ्जतो वाचाय सञ्जतो सञ्जनुत्तमो ।

अञ्मत्तरतो समाहितो एको सन्तुसितो तमाहु भिक्षुं ॥३॥

(हस्तसंयतः पादसंयतो वाचा संयतः संयतोत्तमः ।

अध्यात्मरतः समाहित एकः तन्तुष्टस्तमाहुर्भिक्षुम् ॥३॥)

जिसके हाथ, पैर और वचनमें संयम है, (जो) उत्तम संयमी है, जो घटके भीतर (= अध्यात्म) रत, समाधियुक्त, अकेला (और) सन्तुष्ट है, उसे भिक्षु कहते हैं ।

जेतवन

कोकालिय

३६३—यो मुखसञ्जतो भिक्षु मन्तभाणी अनुद्धतो ।

अत्थं धम्मञ्च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥ ४ ॥

(यो मुखसंयतो भिक्षुर्मन्त्रभाणी अनुद्धतः ।

अर्थं धर्मं च दीपयति मधुरं तस्य भाषितम् ॥ ४ ॥)

जो मुख में संयम रखता है, मनन करके बोलता है, उद्धत नहीं है, अर्थ और धर्म को प्रकट करता है, उसका भाषण मधुर होता है ।

जेतवन

धम्मराम (धेर)

३६४—धम्मरामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं ।

धम्मं अनुस्सरं भिक्षु सद्धम्मा न परिहायति ॥ ५ ॥

(धम्मरामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयन् ।

धर्ममनुस्मरन् भिक्षुः सद्धर्मान्न परिहीयते ॥ ५ ॥)

धर्म में रमण करनेवाला, धर्ममें रत, धर्मका चिन्तन करते, धर्म का अनुस्मरण करते भिक्षु मन्चे धर्म से च्युत नहीं होता ।

राजगृह (वेणुवन)

विपक्ख षेवक (भिक्षु)

३६५—सलाभ नातिमज्जेय्य, नाज्जेस पिहयं चरे ।

अज्जेसं पिहयं भिक्खू समाधिं नाधिगच्छति ॥ ६ ॥

(स्वलाभं नाऽतिमन्येत, नाऽन्येषां स्पृहयन् चरेत् ।

अन्येषां स्पृहयन् भिक्षु समाधिं नाऽधिगच्छति ॥ ६ ॥)

अपने लाभ की अवहेलना नहीं करनी चाहिए । दूसरो के (लाभ) की स्पृहा न करनी चाहिये । दूसरो के (लाभकी) स्पृहा करनेवाला भिक्षु समाधि (= चित्त की एकामता) को नहीं प्राप्त करता ।

३६६—अप्ललाभोपि चे भिक्खु स-लाभं नातिमज्जति ।

तं वे देवा पससन्ति सुद्धाज्जीविं अतन्द्रितम् ॥ ७ ॥

(अल्पलाभोऽपि चेद् भिक्षु स्वलाभं नाऽतिमन्यते ।

तं वे देवाः प्रशंसन्ति शुद्धाऽऽजीवं अतन्द्रितम् ॥ ७ ॥

चाहे अल्प ही हो, भिक्षु अपने लाभकी अवहेलना न करे । उमोकी देवता प्रशंसा करते हैं, (जो) शुद्ध जीविवाला और आलस्यरहित है ।

वेतवन

बहुसं भिक्षु

३६७—सन्धसो नाम-रूपस्मि यसस नत्थि ममायितं ।

असता च न सोचति स वे भिक्खूति वुच्चति ॥ ८ ॥

(सर्घशो नामरूपे यस्य नाऽस्ति ममायितम् ।

अमति च न शोचति स वे भिक्षुत्तियुच्यते ॥ ८ ॥)

नाम-रूप (= जगत) में जिन की विष्कूल ही ममता नहीं, न होने पर (जो) शोक नहीं करता, वही भिक्षु कहा जाता है ।

जेतवन

बहुतसे भिक्षु

३६८—मैत्राविहारी यो भिक्षु प्रसन्नो बुद्धसासने ।

अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्घारूपसमं सुखं ॥ ९ ॥

(मैत्रीविहारी यो भिक्षुः प्रसन्नो बुद्धशासने ।

अधिगच्छेत् पदं शान्तं संस्कारोपशमं सुखम् ॥ ९ ॥)

मैत्री (भावना) से विहार करता जो भिक्षु बुद्धके उपदेश में प्रसन्न (= श्रद्धावान्) रहता है, वह सभी संस्कारों को शमन करने वाले शान्त (और) सुखमय पदको प्राप्त करता है ।

३६९—सिञ्च भिक्षु ! इमं नावं सिक्ता ते लहुमेस्सति ।

छेत्त्वा रागञ्च दोसञ्च ततो निव्वाणमेहिसि ॥ १० ॥

(सिञ्च भिक्षो ! इमां नावं सिक्ता ते लघुत्वं पश्यति ।

छित्त्वा रागं च द्वेषं च ततो निर्वाणमेप्यसि ॥ १० ॥)

हे भिक्षु ! इस नावको उलीचो, उलीचने पर (यह) तुम्हारे लिये हल्की हो जायेगी । राग और द्वेष को छिन्न कर, फिर तुम निर्वाण को प्राप्त होगे ।

३७०—पञ्च छिन्दे पञ्च जहे पञ्च चुत्तरि भावये ।

पञ्च सङ्गातिगो भिक्षु ओघतिण्णो' ति वुच्चति ॥ ११ ॥

(पञ्च छिन्धि पञ्च जहीहि पञ्चोत्तरं भावय ।

पञ्चसंगाऽतिगो भिक्षुः, 'ओघतीर्ण' इत्युच्यते ॥११॥)

(प्रतिसस्तारवृत्तस्याऽऽचारकुशल स्यात् ।

ततः प्रामोद्यबहुलो दुःखस्याऽन्त करिष्यति ॥ १७ ॥)

जो सेवा-सत्कार स्वभाव वाला तथा आचार (पालन) में निपुण है, वह सानन्द दुःख का अन्त करेगा ।

जैतवन

पाँच सौ मित्तु

३७७—वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुञ्चति ।

एव रागञ्च दोसञ्च त्रिप्पमुञ्चेथ भिक्खवो ॥ १८ ॥

(वर्षिका इव पुष्पाणि मर्दितानि प्रमुञ्चति ।

एवं रागं च द्वेषं च विप्रमुञ्चत भिक्षव ॥ १८ ॥)

जैसे जूही कुम्हलाये फूलों को छोड़ देती है, वैसे ही हे भिक्षुओ ! (तुम) राग और द्वेष को छोड़ दो ।

जैठवन

(शान्तकाय धेर)

३७८—सन्तकायो सन्तवाचो सन्तवा सुसमाहितो ।

वन्तलोकामिसो भिक्खु उपसन्तो 'ति वुच्चति ॥ १९ ॥

(शान्तकायो शान्तवाक् शान्तिमान् सुसमाहित ।

वान्तलोकाऽऽमियो भिक्षु 'उपशान्त' इत्युच्यते ॥ १९ ॥)

काया (और) वचन से शान्त, भली प्रकार समाधियुक्त, शान्ति सहित (तथा) लारुके आमियको वमन कर दिये हुए भिक्षुको 'उपशान्त' कहा जाता है ।

जठवन

सङ्गुत्त (धेर)

३७९—अत्तना चादय'त्तान पटिवासे अत्तमत्तना ।

मा अत्तगुत्तो सत्तिमा मुम्भ भिक्खु विहाहिसि ॥ २० ॥

(आत्मना चोदयेदात्मानं प्रतिवसेदात्मानं आत्मना ।

स आत्मगुप्तः स्मृतिमान् सुखं भिक्षो ! विहरिष्यसि ॥२०॥)

(जो) अपने ही आपको प्रेरित करेगा, अपने ही आपको संलग्न करेगा; वह आत्म-गुप्त (= अपने द्वारा रक्षित) स्मृति-संयुक्त भिक्षु सुखसे विहार करेगा !

३८०—अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति ।

तस्मा सञ्जमयत्तानं अस्सं भद्रं व वाणिजो ॥ २१ ॥

(आत्मा ह्यात्मनो नाथ आत्मा ह्यात्मनो गतिः ।

तस्मात् संयमयात्मानं अश्वं भद्रमिव वणिक ॥ २१ ॥)

मनुष्य अपने ही अपना स्वामी है, अपने ही अपनी गति है; इसलिये अपने को संयमी बनावे, जैसे कि सुन्दर घोड़े को बनिया (संयत करता है) ।

राजगृह (वेणुवन)

वक्कलि (धेर)

३८१—प्रामोच्चवहुलो भिक्षु प्रसन्नो बुद्धसासने ।

अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ॥ २२ ॥

(प्रामोच्चवहुलो भिक्षुः प्रसन्नो बुद्धशासने ।

अधिगच्छेत् पदं शान्तं संस्कारोपशमं सुखम् ॥ २२ ॥)

बुद्ध के उपदेश में प्रसन्न बहुत प्रमोदयुक्त भिक्षु संस्कारों को उपशमन करनेवाले सुखमय शान्त पदको प्राप्त करता है ।

श्रावस्ती (पूर्वाराम)

सुमन (सामणेर)

३८२—यो ह वे दहरो भिक्षु युञ्जति बुद्धसासने ।

सो इमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो' व चन्दिमा ॥ २३ ॥

(यो ह वै दहरो भिल्युक्ते बुद्धशासने ।

स इमं लोकं प्रभासयत्यभ्रान् मुक्त इव चन्द्रमा ॥२३॥)

जो भिक्षु यौवनमें बुद्ध-शान्मन (= बुद्धोपदेश, बुद्ध-धर्म) में सलग्न होता है, वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोक को प्रकाशित करता है ।

२६—ब्राह्मणावगो

जेतवन

(एक बहुत श्रदानु ब्राह्मण)

३८३—छिन्द मोतं परक्रम कामे पनुद ब्राह्मण ! ।

संस्कारानं खयं अत्वा अकतञ्जूसि ब्राह्मण ! ॥ १ ॥

(छिन्धि स्रोतः पराक्रम्य कामान् प्रणुद ब्राह्मण ।

संस्काराणां क्षयं ज्ञात्वाऽकृतज्ञोऽसि ब्राह्मण ! ॥ १ ॥)

(वृष्णा हृषी) धारा को काट दो । पराक्रम करो । हे ब्राह्मण !
कामनाओं को दूर करो । हे ब्राह्मण ! संस्कारों के क्षय को जान कर
अकृत = निर्वाण का साक्षात्कार कर लीगे ।

जेतवन

(बहुतसे भिक्षु)

३८४—यदा द्वयेसु धर्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो ।

अथस्स सर्वे संयोगा अर्थं गच्छन्ति जानतो ॥ २ ॥

(यदा द्वयोर्धर्मयोः पारगो भवति ब्राह्मणः ।

अथाऽस्य सर्वे संयोगा अर्थं गच्छन्ति जानतः ॥ २ ॥)

जब धर्माभ्यासी (समर्थ और विदर्शना इन) दो धर्मों में सिद्ध
हो जाता है तब उस ज्ञानी के सभी बन्धन अस्त हो जाते हैं ।

जेतवन

मार

३८५—यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति ।

वीतहरं विसञ्जुत्त तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३ ॥

(यस्य पार अपारं वा पारापारं न विद्यते ।

वीतहरं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥)

जिसके पार (= आँख, कान, नाक, जीभ, काया, मन), अपार (= रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, धर्म) और पारापार (= में और मेरा) नहीं हैं, (जो) निर्भय और अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

(कोई ब्राह्मण)

३८६—भ्यायिं विरजमासीन क्तकिच्चं अनासव ।

उत्तमत्थ अनुप्पत्त तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४ ॥

। ध्यायिणं विरजमासीनं कृतकृत्यं अनासवम् ।

उत्तमार्थमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥)

(जो) ध्यानी, निर्मल, भासनरुद्ध (= स्थिर), कृतकृत्य, आसव (= चित्तमल) रहित है, जिसने उत्तम अर्थ (= सत्य) को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

भाबस्वी (पूर्वाण)

मानन्द (धेर)

३८७—दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा ।

सन्नद्धो न्वत्तियो तपति भायी तपति ब्राह्मणो ।

अथ मन्वमहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा ॥ ५ ॥

(दिवा तपत्यादिच्यो रात्रावाभाति चन्द्रमा ।

सन्नद्धः क्षत्रियस्तपति ध्यायी तपति ब्राह्मणः ।

अथ सर्वमहोरात्रं बुद्धस्तपति तेजसा ॥ ५ ॥)

दिनमें सूर्य तपता है, रातको चन्द्रमा प्रकाशता है, कवचवद्ध (होने पर) क्षत्रिय तपता है, ध्यायी (होनेपर) ब्राह्मण तपता है, और बुद्ध रात-दिन (अपने) तेजसे सब (से अधिक) तपते हैं ।

जेतवन

(कोई प्रव्रजित)

३८८—वाहितपापो 'ति ब्राह्मणो समचरिया समणो' ति वुच्चति ।

पव्वाजयमत्तनो मलं तस्मा पव्वजितो, ति वुच्चति ॥ ६ ॥

(वाहितपाप इति ब्राह्मणः समचर्यः श्रमण इत्युच्यते ।

प्राव्रजयन्नाऽऽत्मनो मलं तस्मात् प्रव्रजित इत्युच्यते ॥ ६ ॥)

जिसने पाप को (धोकर) वहा दिया वह ब्राह्मण है, जो समताका आचरण करता है, वह समण (=श्रमण= संन्यासी) है, (चूँकि) उसने अपने (चित्त-) मलोंको हटा दिया, इसीलिये वह प्रव्रजित कहा जाता है ।

जेतवन

सारिपुत्त (धेर)

३८९—न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुंचेथ ब्राह्मणो ।

धि ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धि यस्स मुञ्चति ॥ ७ ॥

(न ब्राह्मणं प्रहरेत् नाऽस्मै मुञ्चेद् ब्राह्मणः ।

धिग् ब्राह्मणस्य हन्तारं ततो धिग् यस्मै मुंचति ॥ ७ ॥)

ब्राह्मण (= निष्पाप) पर प्रहार नहीं करना चाहिये, और ब्राह्मण

को भी उस (प्रहारदाता) पर (कोप) नहीं करना चाहिये । ब्राह्मण को जो मारता है उसे धिक्कार है, और धिक्कार उसको भी है जो (उसके लिये) कोप करता है ।

३९०-न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो

यदा निसेधो मनसो प्रियेहि ।

यतो यतो हिंसमनो निवर्तति

ततो ततो सम्मति एव दुक्खं ॥ ८ ॥

(न ब्राह्मणस्यैतद् अकिञ्चित् श्रेयो

यदा निषेधो मनसा प्रियेभ्यः ।

यतो यतो हिंस्रमनो निवर्तते

ततस्ततः शाम्यत्येव दुःखम् ॥ ८ ॥)

ब्राह्मण के लिये यह बात कम कल्याण (कारी) नहीं है, जो वह प्रिय (पदार्थ) से मन को हटा लेता है, जहाँ जहाँ मन हिसा में मुड़ता है, वहाँ वहाँ दुःख (अश्रय) ही शान्त हो जाता है ।

वेतवन

महापजापति गोमयी

३९१-यस्य कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं ।

संवृतं तीहि टानेहि तमहं वमि ब्राह्मणं ॥ ९ ॥

(यस्य कायेन वाचा मनसा नाऽस्ति दुष्कृतम् ।

संवृतं त्रिमिः स्थानैः, तमहं वमि ब्राह्मणम् ॥ ९ ॥)

त्रिमके मन, पचन और कार्य से दुष्कृत (= पाप) नहीं होते, (जो इन) तीनों ही स्थानों में सपर (= समय)-मुक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

सारिपुत्त (,थेर)

३९२—यग्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्धदेसितं ।

सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्निहुत्तं 'व ब्राह्मणो ॥ १० ॥

(यस्माद् धर्मं विजानीयात् सम्यक्-संबुद्ध-देशितम् ।

सत्कृत्य तं नमस्येद् अग्निहोत्रमिव ब्राह्मणः ॥ १० ॥)

जिस (उपदेशक) से सम्यक्संबुद्ध (= बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट धर्म को जाने, उसे (वैसे ही) सत्कार-पूर्वक नमस्कार करे, जैसे अग्निहोत्र को ब्राह्मण ।

जेतवन

जटिल ब्राह्मण

३९३—न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।

यग्ग्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥ ११ ॥

(न जटाभिर्न गोत्रैर्न जात्या भवति ब्राह्मणः ।

यस्मिन् सत्त्यं च धर्मश्च स शुचिः स च ब्राह्मणः ॥११॥)

न जटासे, न गोत्रसे, न जन्मसे ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्त्य और धर्म हैं, वही शुचि (पवित्र) और वही ब्राह्मण है ।

वैशाली (कूटागारसाला)

(पाखंडी ब्राह्मण)

३९४—किं ते जटाहि दुग्ग्धे ! किं ते अजिनसाटिया ।

अव्वभन्तरं ते गहनं वाहिरं परिमज्जसि ॥ १२ ॥

(किं ते जटाभिः दुग्ग्धे ! किं तेऽजिनशाट्या ।

आभ्यन्तरं ते गहनं वाहिः परिमार्जयसि ? ॥ १२ ॥)

हे दुर्बुद्धि ! जटाओंसे तेरा क्या (बनेगा), (और) मृगचर्मके पहिनेसे तेरा क्या ? भीतर (दिल) तो तेरा (राग आदि मलोंसे) परिपूर्ण है, बाहर क्या धोता है ?

राजगृह (गृध्रकूट)

किसा गोमती

३९५-पांसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं ।

एकं वनस्मिं स्थायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १३ ॥

(पांसुकूलधरं जन्तुं कृतं धमनिसन्ततम् ।

एकं वने ध्यायन्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १३ ॥)

जो प्राणी फटे चीथड़ोंको धारण करता है, जो दुबला पतला और नसोंसे भरे शरीरवाला है, जो अकेला वनमें ध्यानरत रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

बेटवन

(एक ब्राह्मण)

३९६-न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसम्भवं ।

‘भो वादि’ नाम सो होति स चे होति सक्किञ्चनो ।

अक्किञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १४ ॥

(न चाऽहं ब्राह्मणं ब्रवीमि योनिजं मातृसम्भवम् ।

‘भो वादी’ नाम स भवति स वै भवति सक्किञ्चनः ।

अक्किञ्चनं अनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १४ ॥)

माता की योनि से उत्पन्न होने के कारण किसी को मैं ब्राह्मण नहीं कहता । यदि यह सम्बन्ध हो तो जोग (भले ही) उसे (सम्मानपूर्वक)

‘भो’ कह कर पुकारें । मैं तो ब्राह्मण उसे कहता हूँ जो अपरिग्रही और त्यागी है ।

राजगृह (वेणुवन)

उगसेन (श्रेष्ठीपुत्र ;

३९७—सव्यसञ्जो जनं छेत्त्वा यो वै न परितस्सति ।

सङ्गातिगं विसञ्जुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १५ ॥

(सर्वसंयोजनं छित्त्वा यो वै न परित्स्यति ।

संगाऽतिगं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १५ ॥)

जो सारे संयोजनों (= बंधनों) को काटता है, जो कि भय नहीं खाता, जो संग और आसक्ति से विरत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

(दो ब्राह्मण)

३९८—छेत्त्वा नन्दिं वरत्तञ्च सन्दामं सहनुक्कमं ।

उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १६ ॥

(छित्त्वा नन्दिं वरत्तां च सन्दानं सहनुक्कमम् ।

उत्तिक्षत्तपरिघं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १६ ॥)

नद्धि, रस्सी, पगहे और जाले को काट, जूए को फेंक जो बुद्ध हुआ उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ । ❀

राजगृह (वेणुवन)

(अक्कोस) भारद्वाज

३९९—अक्कोसं बधवन्धञ्च अदुट्ठो यो तित्तिक्खति ।

खन्तिवलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १७ ॥

(अक्रोशन् बध-बंध च अदुष्टो यस्तितिक्षति ।

क्षान्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १७ ॥)

जो बिना दूषित (चित्त) क्रिये गाला, बध और बधन को सहन करता है, समा बल ही जिसके बल (= सेना) का सनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन)

सारिपुत्त (थेर)

४००—अक्रोधनं वतवन्तं शीलवन्तं अनुस्सुतं ।

दन्तं अन्तिमशरीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ १८ ॥

(अक्रोधनी व्रतवन्तं शीलवन्तं अनुश्रुतम् ।

दान्तं अन्तिमशरीरं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १८ ॥)

जो अक्रोधी, व्रता, शीलवान्, बहुश्रुत, सयमा (= दान्त) और अन्तिमशरीर वाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह [वेणुवन]

उपलवण्णा [थेरी]

४०१—वारिं पोक्खरपत्ते 'व आरग्गेरिवं सासपो ।

यो न लिप्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ १९ ॥

(वारिं पुक्खरपत्तं इव, आरग्गं इव सर्पप' ।

यो न लिप्पते कामेषु तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥ १९ ॥)

कमलके पत्ते पर जल, और आरे के नोक पर सरसा का भँति प्रो भोगों में लिप्त नहीं होता, उम मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

बेतवन

(कोरे ब्राह्मणो)

४०२—यो दुक्खस्स पज्जानाति इधेव म्बयमत्तना ।

पनभारं विसञ्जुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ २० ॥

(यो दुःखस्य प्रजानातीहैव क्षयमात्मनः ।

पन्नभारं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२०॥)

जो यहीं (= इसी जन्म में) अपने दुःखोंके विनाशको जान लेता है, जिसने अपने बोझको उतार फेंका, और जो आसक्तिरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (गृध्रकूट)

खेमा (भिक्षुणी)

४०३-गम्भीरपञ्चं मेधाविं ममामगसस कोविदं ।

उत्तमत्थं अनुप्यत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २१ ॥

(गम्भीरप्रज्ञं मेधाविनं मार्गामार्गस्य कोविदम् ।

उत्तमार्थमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२१॥)

जो गम्भीर प्रज्ञावाला, मेधावी, मार्ग-अमार्ग का ज्ञाता, उत्तम पदार्थ (= सत्य) को पाये है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जैतवन

(पन्मारवासी) तिस्त (घेर)

४०४-असंसट्ठं गहट्ठेहि अनागारेहि चूमयं ।

अनोकसारि अप्पिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २२ ॥

(असंसृष्टं गृहस्थैः अनागारैश्चोभाभ्याम् ।

अनोकसारिणं अल्पेच्छं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२०॥)

घरवाले (= गृहस्थ) और बेघरवाले दोनों ही में जो लिस नहीं होता, जो विना ठिकाने के घूमता तथा अल्पेच्छ है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

वेतवन

(कोरि भिन्दु)

४०५-निधाय दण्डं भूतेषु तसेसु थावरेसु च ।

यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २३ ॥

(निधाय दण्डं भूतेषु स्थावरेषु च ।

यो न हन्ति न घातयति तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२३॥)

चर-अचर (सभी) प्राणियों में प्रहारविरत हो, जो न मारता है, न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

वेतवन

चार श्रामणेर

४०६-अविरुद्धं विरुद्धेसु अत्तदण्डेसु निच्चुतं ।

सादानेसु अनादान तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २४ ॥

(अविरुद्धं विरुद्धेसु अत्तदण्डेसु निच्चुतं ।

सादानेष्वानादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२४॥)

जो विरोधियों के बीच विरोधरहित रहता है, जो दण्डधारियों बीच (दण्ड-) रहित है, सम्राहियों में जो समहरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन)

महापन्थक (घेर)

४०७-यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो ।

सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २५ ॥

(यस्य रागश्च द्वेषश्च मानो अक्षय्य पातितः ।

सर्पप इघाऽऽराप्रात् तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२५॥)

आरं के ऊपर सरसो की भाँति, जिसके (चित्त से) राग, द्वेष, मान, डाह, फँक दिए गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वैष्णव)

पिलिन्द (बच्छ धेर)

४०८—अककसं विञ्जापनिं गिरं सच्चं उदीरये ।

याय नाभिसजे किञ्चि तमहं व्रूमि ब्राह्मणं ॥२६॥

(अककशां विज्ञापनीं गिरं सत्त्यां उदीरयेत् ।

यया नाभिसजेत् किञ्चित् तमहं व्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२६॥)

(जो इस प्रकार की) अककशा, सार्यक (तथा) सच्ची वाणी को बोलें; कि जिससे कुछ भी पीडा न होवे, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

कोइं स्थविर

४०९—यो'धदीवं वा रस्सं वा अणुं थूलं सुभानुभं ।

लोके अदिन्नं नादियते तमहं व्रूमि ब्राह्मणं ॥२७॥

(य इह दीवं वा हस्वं वाऽणुं स्थूलं सुभाऽणुभम् ।

लोकेऽदत्तं नादत्ते तमहं व्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२७॥)

(चीज) चाहे दीवं हो या हस्व, मोटा हो या पतली, शुभ हो या अशुभ, जो संसार में (किसी भी) दिना दी गई चीज को नहीं खेता उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

(आशा यस्य न विद्यन्तेऽस्मिन् लोके परस्मिन् च ।
निराशयं विसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२८॥

इस लोक और परलोक के विषय में जिसकी आशायें (= चाह) नहीं रह गई हैं, जो आशारहित और आसक्तिरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

महामोग्गलान (धेर)

४११—यस्सालया न विज्जन्ति अज्जाय अकथं कथी ।
अमतोगधं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२९॥

(यस्याऽऽलया न विद्यन्त आशयाऽऽकथं कथी ।
अमृताद्यगाधमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२९॥)

जिसे मृषा (= भालय) नहीं है, जो जानकर सन्नयरहित होगया है तथा जिमने पैठकर अमृत पद निर्वाण को पा लिया है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

वावस्ती (पूर्वागम)

वेरत (धेर)

४१२—यो'ध पुब्बञ्च पापञ्च उभो सहगं उपचगा ।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३०॥

(य इह पुण्यं च पापं चोभयोः संगं उपात्यगात् ।
अशोकं विरजं शुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३०॥)

जिसने यहाँ पुण्य और पाप दोनों को प्राप्तिको छोड़ दिया, जो शोकरहित, निर्मल, और शुद्ध है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

चन्द्राम (थेर)

४१३-चन्दं विमलं शुद्धं विप्पसन्नमनाविलं ।

नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं व्रूमि ब्राह्मणं ॥३१॥

(चन्द्रमिव विमलं शुद्धं विप्रसन्नमनाविलम् ।

नन्दीभवपरीक्षीणं तमहं व्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३१॥)

जो चन्द्रमा को भांति विमल, शुद्ध, स्वच्छ = अनाविल है (तथा-जिसकी) सभी जन्मोंकी तृष्णा नष्ट हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

कुण्डिया (कोवलि)

सीवलि (थेर)

४१४- यो इमं पल्लिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा ।

तिण्णो पारतो भायी अनेजो अकथंकथी ।

अनुपादाय निव्वुतो तमहं व्रूमि ब्राह्मणं ॥३२॥

(य इमं प्रतिमथं दुर्गं संसारं मोहमत्यगात् ।

तीर्णः पारगतो ध्याय्यनेजोऽकथंकथी ।

अनुपादाय निवृत्तः तमहं व्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३२॥)

जिसने इस दुर्गम संसार, (=जन्म मरण) के चक्कर में डालनेवाले मोह (रूपी) उलटे मार्ग को त्याग दिया, जो (संसार से) पारंगत, ध्यानी तथा तीर्ण (= तर गया) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

सुन्दर समुद् (थेर)

४१५-यो 'ध कामे पहत्त्वान अनागारो परिव्वजे ।

कामभवपरिक्खीणं तमहं व्रूमि ब्राह्मणं ॥३३॥

(य इह कामान् प्रहायाऽनागारः परिव्रजेत् ।

कामभवपरिक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३३॥)

जो यहाँ भोगों को छोड़, बेघर हो प्रव्रजित (=संन्यासी) हो गया है, जिसके भोग और जन्म नष्ट हो गये, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन)

त्रिल (धेर)

४१६-यो 'ध तण्हं पहत्त्वान अनागारो परिव्वजे ।

तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३४॥

(य इह तृष्णां प्रहायाऽनागारः परिव्रजेत् ।

तृष्णाभवपरिक्षीणं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३४॥)

जो यहाँ तृष्णा को छोड़, बेघर बन प्रव्रजित है, जिसकी तृष्णा और (पुनर्) जन्म नष्ट हो गये, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन)

(भूतपूर्व नष्ट भिक्षु)

४१७-हित्वा मानुसकं योगं दिव्यं योगं उपच्चगा ।

सव्ययोगविमंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३५॥

(हित्वा मानुषकं योगं दिव्यं योगं उपात्यगात् ।

सर्वयोगविसंयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३५॥)

जो मनुष्य के बन्धनों को छोड़, दिव्य बन्धनों को भी छोड़ चुका है सभी बन्धनों से रहित उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१८-हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च सीतिभूतं निरूपधिं ।

सव्वलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३६॥

(हित्वा रतिं चाऽरतिं च शीतिभूतं निरूपधिम् ।

सर्वलोकाऽभिभवं वीरं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३६॥)

संतोष-असंतोष की बात छोड़ जो शान्त और परिग्रहरहित हो चुका है; उस सर्वलोकविजयी वीर को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राजगृह (वेणुवन)

वक्कीस (धेर)

४१९-च्युतिं यो वेदि सत्तानं उपपत्तिञ्च सव्वसो ।

असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३७॥

(च्युतिं यो वेद सत्त्वानां; उपपत्तिं च सर्वशः ।

असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३७॥)

जो प्राणियों की च्युति (= मृत्यु) और उत्पत्तिको भली प्रकार जानता है, (जो) आसक्तिरहित सुगत (= सुन्दर गतिको प्राप्त) और बुद्ध (= ज्ञानी) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

४२०-यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धच्चमानुसा ।

खीणासवं अरहन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३८॥

(यस्य गतिं न जानन्ति देव-गंधर्व-मानुषाः ।

क्षीणास्रवं अरहन्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३८॥)

जिसकी गति (= पहुँच) को देवता, गंधर्व, और मनुष्य नहीं जानते, जो क्षीणास्रव (= रागादिरहित) और अर्हन्त है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन)

धम्मदिन्ना (धेर)

४२१-यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं ।

अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३९॥

(यस्य पुरश्च पश्चाच्च मध्ये च नाऽस्ति किञ्चन ।

अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३९॥)

जिसके पूर्व और पश्चात् और मध्यमें कुछ नहीं है, जो परिग्रहरहित = आदानरहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जैतवन

ब्रह्मलिमाल (धेर)

४२२—उसमं पवरं वीरं महसिं विजिताविनं ।

अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४०॥

(ऋषभं प्रवरं वीरं महसिं विजितवन्तम् ।

अनेजं स्नातकं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥४०॥)

(जो) ऋषभ (= श्रेष्ठ), प्रवर, वीर महसिं, विजेता अकम्प्य, स्नातक और बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जैतवन

देवहित (ब्राह्मण)

४२३—पुब्बेनिवासं यो वेदि मग्गापायञ्च पस्सति ।

अथो जातिस्वयं पत्तो अभिञ्जावोसितो मुनि ।

सव्ववोसितवोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४१॥

(पूर्वनिवासं यो वेद स्वर्गाऽपायं च पश्यति ।

अथ जातिक्षयं प्राप्तोऽभिज्ञाव्यवसितो मुनिः ।

सर्वव्यवसितव्यवसानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥४१॥)

जो पूर्वजन्म को जानता है, स्वर्ग और नरक को जिसने देख लिया है, जिसका पूर्वजन्म क्षीण हो चुका है, जिसकी प्रज्ञा पूर्ण हो चुकी है, जिसने अपना सब कुछ पूरा कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

बोधिनी

गाथा १ धम्मा = चित्तकी प्रवृत्तियाँ ।

‘मन’ शब्द से यहाँ अर्थ है अच्छे या बुरे चित्तों का । साधु महात्मा को देखकर श्रद्धालु उपासक को दान देने का चित्त=मन उत्पन्न होता है । अथवा, शत्रु को देखकर शत्रु को उसकी हिंसा करने का चित्त उत्पन्न होता है, इत्यादि । दान देने के चित्त के साथ श्रद्धा, स्मृति, त्यागभाव मैत्री आदि अच्छी २ प्रवृत्तियाँ (=चैतसिक) उत्पन्न होती हैं । उसी तरह, हिंसा करने के चित्त के साथ मोह, निर्लज्जता, द्वेष, अभिमान आदि बुरी २ प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं ।

अभिघर्म के अनुसार चित्त ८९ हैं, और चैतसिक ५२ ।

गाथा ७-८ सुभानुपस्सी—असुभानुपस्सी—संसार की आकर्षक चीजों को देख उनमें जो रस लेता है उसे ‘सुभानुपस्सी’ कहते हैं । और जो उनके प्रति वैराग्य उत्पन्न करता है उसे ‘असुभानुपस्सी’ कहते हैं । उदाहरणार्थ, ‘सुभानुपस्सी’ मूढ़ मनुष्य स्त्री-रूप को देखकर उसे बड़ा सुन्दर और सुखद समझता है; किंतु शानी ‘असुभानुपस्सी’ उसे माँस, हड्डी लहू, मल, मूत्र, आदि गन्दगियों से भरा देखता है ।

गाथा ९—अनिक्कसावो कासावं—पहले ‘कसाव’ शब्द का अर्थ है ‘चिन्ता-मल’, और दूसरे का अर्थ है ‘काषाय वस्त्र’ ।

गाथा ३१—संयोजन = सांसारिक बन्धन ।

संयोजन दस हैं, जिनसे ब्रह्म प्राणी आवागमन के चक्र से नहीं छूटता । पहले पाँच संयोजनों को 'नीचे वाले' (= ओरभागियानि) और दूसरे पाँच को 'ऊपर वाले' (= उद्धभागियानि) बन्धन कहते हैं । यहाँ 'अणु' और 'स्थूल, संयोजनों से अर्थ इन्हीं से है ।

पहले तीन संयोजन हैं—(१) सत्कायदृष्टि = आत्मा के होने में विश्वास, (२) विचिकित्सा = संदेह, (३) शीलव्रतपरामर्श = स्नान तीर्थाटनादि बाह्य आचारों से ही केवल मुक्ति पा लेने में विश्वास । योगाभ्यास से अनित्य-अनात्म-दुःख का साक्षात्कार कर जिसने इन तीनों का प्रहाण कर दिया है उसे श्रोतापन्न कहते हैं, क्योंकि वह मोक्ष-गामी धारा में चला आया है । वह अधिक से अधिक सात जन्म ग्रहण करेगा । इसी के भीतर वह अवश्य निर्वाण पा लेगा । इसके बाद के दो संयोजन हैं—(४) कामञ्जन्द = विषयकामना, और (५) व्यापाद = द्वेष । इन दो संयोजनों को अत्यन्त दुर्बल करके योगी सह्यदागामी पद प्राप्त करता है । मरकर वह एक बार फिर मनुष्य-योनि ग्रहण करता है, और निर्वाण प्राप्त कर लेता है । इन्हीं दो संयोजनों को यदि उसने सर्वथा प्रहाण कर दिया तो वह अनागामी हो जाता है; तब वह मरकर किसी देवलोक में जन्म ग्रहण करता है, और वहीं उच्च से उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त होता हुआ निर्वाण पा लेता है ।

आगे के पाँच संयोजन हैं—(६) रूपराग, (७) अरूपराग = रूपावचर और अरूपावचर योग की दो भूमियाँ हैं, उनमें भी तृष्णा करना बन्धन है । (८) मान, (९) औदत्य = चंचलता और (१०) अविद्या । इनसे भी सर्वथा प्रहाण कर योगी अर्हंत हो जाता है । योज-

तृष्ण हो जाने के कारण उसके कर्म दग्धबीज की तरह विपाक = फल उत्पन्न नहीं करते । शरीरत्याग के बाद वह फिर जन्म ग्रहण नहीं करता, आवागमन से युक्त हो जाता है ।

श्रोतापन्न से विलकुल अर्हत् होने की एक अवस्था पहले, तक प्राप्त सन्तको सेख = शैक्ष कहते हैं, क्योंकि उसे अभी कुछ और सीखना बाकी रहता है । जब वह सभी कुछ सीखकर पूर्ण सिद्ध कृतकृत्य अर्हत् हो जाता है, तब उसे असेख = अशैक्ष कहते हैं, क्योंकि उसे अब कुछ सीखना बाकी नहीं है ।

श्रोतापन्न होने से पूर्व आवागमन के चक्र में पड़े सभी को पुथुज्जन = पृथक् जन कहते हैं ।

गाथा ४४—सेख = शैक्ष । देखिए गाथा ३१ ।

गाथा ४५—मृत्यु—पाप का अविपति 'मार' है । वही मृत्यु का भी द्योतक है । जो पाप से सर्वथा मुक्त हो गया, वह मृत्युञ्जय है, क्योंकि वह आवागमन के चक्र से छूट गया है ।

गाथा ४६—वैसे ही मुनि... इसका अर्थ यह है कि मित्तु चुपचाप अधोदृष्टि किए गाँव में भिक्षाटन करे, अपनी ओर से किसी को कोई कष्ट होने न दे ।

गाथा ६९—विपाक = कर्मफल । जब तक किसी की अविद्या-अन्धि प्रहीण नहीं हुई है तब तक उसके अच्छे या बुरे कर्मों के संस्कार जमा होते रहते हैं, जिनके अनुसार पुनर्जन्म में उसकी गति होती है । इसे कर्म-बन्ध कहते हैं । यही कर्म का 'विपाक' है ।

गाथा ७०—महीन महीने पर... इसका अर्थ यह है कि केवल

उपवासादि कठिन व्रतों के पालन करने से चित्त की शुद्धि नहीं होती। चित्त की शुद्धि तो योगाभ्यास से धर्म का साक्षात्कार करने से ही होती है। उपवासादि का ढोंग रच कर जो दूसरों पर प्रभाव डालना चाहते हैं उनसे सावधान रहना चाहिए।

गाथा ८५—उस पार = निर्वाण। किनारे ही किनार = सत्काय दृष्टि वाले सिद्धान्तों में पड़े रहते हैं। अर्थ यह है कि बहुत लोग मुक्ति के रट लगाते हैं, विदु आनन्द और सुख की तृष्णा को त्याग नहीं सकते। यह सुनकर काँप जाते हैं कि निर्वाण में उनका सर्वथा निरोध हो जायगा। इस कारण वे मुक्ति की तरह के की कल्पना करते हैं जिसमें वे किसी स्थिर, सुखी, एकरस स्थितिका लाभ करना चाहते हैं। वे उस पार जाने वाले नहीं हैं।

गाथा ८९—सम्बोध्यङ्ग—सात हैं—(१) स्मृति=सतत जागरूकता (२) धर्मविचय-सत्यजिज्ञासा, (३) वीर्य = धर्माभ्यास में उत्साह, (४) प्रीति = एकाग्रता जनित चित्त का अह्लाद, (५) प्रभन्धि = चित्त की परम शांति, (६) समाधि = अकम्प्य एकाग्रता, और (७) उपेक्षा = चित्त में सुख या दुःख का लेश भी नहीं रहना।

इन सात अङ्गों को सिद्ध करके ही कोई परम ज्ञान (= सम्बोधि) का लाभ कर सकता है। अतः, इन्हें सम्बोध्यङ्ग कहते हैं।

सुखाश्रय—अर्थात्, जिसका चित्तमल सर्वथा प्रदीप्त हो चुका है।

गाथा ९०—मार्ग - आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग में सिद्धि प्राप्त कर चुक हो गया है। उसे अब कुछ और सिद्ध करना बाकी नहीं रहा। यह अष्टाङ्गिक मार्ग है—(१) सम्पक् दृष्टि=अनित्य अनान्य दुःख का

ज्ञान, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वाणी, (४) सम्यक् कर्म, (५) सम्यक् जीविका, (६) सम्यक् व्यायाम = सदुत्साह, (७) सम्यक् स्मृति, और (८) सम्यक् समाधि । इनमें पहले दो ज्ञान-सम्बन्धी = प्रज्ञा हैं; त्रीच के चार आचारसम्बन्धी = शील हैं; और अन्तिम दो योग-सम्बन्धी = समाधि हैं ।

ग्रन्थियाँ = संयोजन, देखिए गाथा ३१ ।

गाथा ६२—शून्य, अनिमित्त—समाधिस्थ हो योगी जब सत्ता मात्र के अनित्य-अनात्म-दुःख स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है तब उसकी तृष्णा नष्ट हो जाती है, और वह शरीर त्याग के बाद फिर जन्म नहीं ग्रहण करता । यही अर्हत् का पद है । निर्वाण = विमोक्ष तो एक ही है, किंतु प्राप्त करने के मार्ग के भेद से इसके तीन नाम हैं । जिस योगी ने अनात्म का साक्षात्कार करके तृष्णा का प्रहाण किया है उसके इस निर्वाण को 'शून्य-स्वरूप' कहते हैं । जिसने अनित्य का साक्षात्कार करके तृष्णा का प्रहाण किया है उसके इस निर्वाण को 'अनिमित्त-स्वरूप' कहते हैं । जिसने दुःख का इस निर्वाण को 'अप्रणिहित-स्वरूप' कहते हैं ।

गाथा ६५—इन्द्रकील—पहले नगरद्वार के ठीक सामने पत्थर का बहुत बड़ा स्तम्भ खड़ा कर देते थे, जिससे आक्रमण के समय शत्रु हाथी को हूल कर दरवाजे को तोड़ न सके । वह खूब दृढ़ और ठोस होता था । इसी से स्थिरता की उपमा उससे दी जाती थी ।

ग्रन्थियों = संयोजन । देखिए गाथा ३१ ।

गाथा ९६—सम्मदञ्जा = यथार्थज्ञान—समाधिस्थ हो अनित्य-अनात्म-दुःख का साक्षात्कार करने से जो परम ज्ञान प्राप्त होता है ।

गाथा ६७—यह द्वयर्थक गाथा है । इसके शब्दों के दो २ अर्थ इस प्रकार हैं—

शब्द	ऊपरी अर्थ	यथार्थ
अस्सद्धो	= भ्रष्टा रहित	अन्ध विश्वास
अकृतञ्ज	= अकृतज्ञ	अकृत=निर्वाण, उसको जानने वाला
सन्धिच्छेदो	= संध मारने वाला	सन्धि=संयोजन, उसे जिसने छिन्न कर दिया है
इतावन्तासो	= अवकाश रहित	पुनर्जन्म का जिसे अवकाश नहीं
वन्तासो	= आशरहित	आशा=तृष्णा, जिसकी साथे तृष्णा छूट चुकी है ।

इस तरह, गाथा के ऊपरी अर्थ देखने से बड़ा उदपदांग का लगता है । यह कि, जो भ्रष्टाहीन, अकृतज्ञ, संध मारने वाला, अवकाशहीन, निराश है वही उत्तम पुरुष है । किंतु, इसका सच्चा अर्थ तो गाथा के साथ है ।

गाथा १००—ऋजुमूत = सीधे, जिनमें किसी प्रकार की मुटिलता नहीं है । “भोतापन्न से लेकर अर्हत तक” अष्टरूपा ।

गाथा १०९—चार वार्ते—मिलारण मनु, २, १२१ ।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।

चत्वारि तस्य वर्षन्ते आयुर्विद्या यशो वलम् ॥

गाथा १२९—मिलारण, हितोपदेश १. २.

प्राणा यथात्मनोऽमीष्टा भूतानामपि ते तथा ।

आत्मीयम्येन मृतेषु दयां नुर्वन्ति साधवः ॥

गाथा १३१—मिलाइए, मनु ५. ४५.

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।

स जीवन्श्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेवते ॥

महाभारत—

अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः ।

आत्मनः सुखमिच्छन् स प्रेत्य नैव सुखी भवेत् ॥

गाथा १५३-१५४

बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद ही भगवान् के मुख से यह गायत्री निकली थी—

यहाँ गृहकारक से अर्थ है तृष्णा का, क्योंकि यही इस शरीररूपी गृह को बार २ इस संसार में खड़ा करती है ।

फासुका = कदियों से अर्थ है बारहों निदान का । गृहकूट = गृह का शिखर से अर्थ है अविद्या का, क्योंकि बारह निदानों की कोटि यहीं है । 'संस्कार-रहित' का अर्थ है कर्मबन्ध में मुक्त ।

• अनिर्व्वसं = न जानते हुए ।

सन्धाविस्तं—यह भविष्यकाल' आत्मनेपद, उत्तमपुरुष, एकवचन का रूप है । देखिए, पालिमहाव्याकरण ! यहाँ भूतकाल के अर्थ में भविष्यत्काल का प्रयोग हुआ है ।

गाथा १५७—तीन पहर—रात के तीन पहर में एक पहर जागकर अभ्यास अवश्य करे । अथवा, तदृण, युवा और वृद्ध इन तीन अवस्थाओं में किसी एक में सग्हल कर उत्साह से योगाभ्यास करे ।

गाथा १६०—मिलाहए, भगवद्गीता ६, ५ ।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

आत्मैव ह्यात्मनो ॥ बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

गाथा १६२—मालुवा लता—यह लता वृक्ष पर पूरी तरह छा जाती है । इसके पत्ते कटोरे जैसे खुले होते हैं । पानी बरसने पर सभी पत्ते भर जाते हैं, और उनके वजन से बड़े बड़े वृक्ष भी गिर जाते हैं । अद्भुत कथा ।

गाथा १६४—मिथ्या धारणा—आत्मा में विश्वास करना, तथा किसी भी पदार्थ को नित्य और सुख करके मानना ।

गाथा १७५—मार = पाप का अधिपति । काम क्रोध आदि सभी बुरी वृत्तियाँ उसकी सेना कही जाती हैं ।

गाथा १७८—श्रोतापति-फल—देखिए गाथा ३१ । श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत्, इन चारों के मार्ग और फल के भेद से दो २ अवस्थाएँ हैं । उस पद को प्राप्त करने का जो पहला चरण है उसे 'मार्ग' कहते हैं । जब वह जान कर दूसरे चरण में उस पर स्थिर हो जाता है तो उसे 'फल' कहते हैं । इस तरह, मोक्षका प्रारम्भ श्रोतापत्ति-मार्ग से होता है और अर्हत्फल में जाकर पूर्ण हो जाता है ।

गाथा १८५—प्रातिमोक्ष-भगवान् ने भिक्षुओं को जिन नियमों का पालन करने को आदेश दिया उन्हीं के संग्रह 'को प्रातिमोक्ष' कहते हैं । प्रत्येक भिक्षु से आशा की जाती है कि वह उन नियमों को पूर्णतया निभायेगा ।

गाथा १८२—संयक् प्रज्ञा = समाधिस्थ हो अनित्य-अनात्म वुःख

का साक्षात्कार कर सत्ता मात्र के स्वरूप का जो ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसी से यहाँ अभिप्रेत है ।

आर्य आष्टांगिक मार्ग—देखिए गाथा ९० ।

गाथा २००—प्रीतिमन्त्र आभास्वर देव—यह एक देवयोनि है, जहाँ उनके चित्तका भीतरी आह्लाद ही उनका भोजन है ।

गाथा २०२—पाँच स्कन्ध—ये हैं—(१) रूप, (२) वेदना, (३) संज्ञा, (४) संस्कार, और (५) विज्ञान । हमारा व्यक्तित्व इन्हीं भौतिक और मानसिक अवस्थाओं का समुदाय मात्र है । इनसे पृथक् आत्मा = जीव = पुरुष नाम की कोई चीज़ नहीं है ।

गाथा—२०३—संस्कार = कर्मबन्ध

गाथा २१८—ऊर्ध्वस्त्रोत्—यह आनागामी की अवस्था है, देखिए गाथा ३१ ।

मनुष्य योनि से च्युत हो कर वह किसी देवलोक में उत्पन्न होता है, और वहीं उच्च से उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त करता हुआ निर्वाण का लाभकर लेता है । इसी से उसे ऊर्ध्वस्त्रोत् अर्थात् धारा के ऊपर चढ़नेवाला कहते हैं ।

गाथा २२१—संयोजन—देखिए गाथा ३१ ।

नाम-रूप—सभी भौतिक अवस्थाओं को 'रूप, और सभी अभौतिक अवस्थाओं (= चित्त, चैतसिक, सूक्ष्म रूप, निर्वाण, प्रज्ञाति = concept) को 'नाम' कहते हैं ।

गाथा २३६—पाथेय, यहाँ इसका अर्थ 'पुण्य कर्म' से है, क्योंकि परलोक में अपना पुण्य ही आधार होता है ।

द्वीप=इस संसार सागर में प्रतिष्ठा-भूत अपने सुकर्म ।

आर्यों के दिव्य पद—श्रोतापत्र आदि पहुँचे हुए सतों को 'आर्य=श्रेष्ठ' कहते हैं, उनके पद ।

गाथा २९२—*कायगता सति*=अपने शरीर के विषयों में स्मृति । हम लोगों का शरीर बत्तीस प्रकार की गन्दगियों से मरा है, जैसे केश, लोम, नख, दाँत, त्वचा, मांस, श्नायु, हड्डी, मज्जा, हृदय, यकृत, क्लोमक, स्क्लीहा, फुफ्फुस, श्रोत, लम्बी श्रोत, उदर, मैला, मूत्र, पित्त, कफ, पीव, लहू, पसीना, चरबी, आंसू, बसा, थूक, नाक का पोटा, लस्सी, दिमाग । अपनी इन गन्दगियों पर मनन करने से अपने शरीर के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है, और मुक्ति की ओर प्रवृत्ति होती है । इन पर मनन करके इनके विषय में सतत जागरूक रहने को 'कायगता सति' कहते हैं ।

गाथा २९४-२९५—*शाश्वत दृष्टि और उच्छेद दृष्टि*—मरने के बाद कूटस्थ वही स्थिर आत्मा=जीव एक शरीर से निकल कर दूसरे में प्रवेश करता है, ऐसी मिथ्या धारणा को शाश्वत दृष्टि कहते हैं । और, मरने के बाद व्यक्तित्व का लोप हो जाता है, वह नहीं रहता, ऐसी मिथ्या धारणा को उच्छेद दृष्टि कहते हैं । इन दोनों अन्तों को ह्योव, धीव दर्शन मध्य का मार्ग बताता है । यह कि, चित्त की संतति प्रतीत्यसमुत्पन्न हो एक योनि से दूसरी योनि में प्रवाहित होती है । जिस प्रकार पहले पहर की प्रदीप-शिला दूसरे पहर में धिल्लुल बही नहीं रहती है, और न अत्यन्त भिन्न हो जाती है, उसी तरह जनमने वाला न तो धिल्लुल बही है और न भिन्न । किन्तु, उसका तादात्म्य संततिगत है ।

गाथा २९५—*वैव्यग्यपद्यमं*=पांच नीरण । पांच नीरण है—

(१) कामच्छन्द = विषयकामना, (२) व्यापाद = द्वेष, (३) स्त्यान-मृद्व = आलस्य, (४) औद्वत्य-कौकृत्य = चिन्त का चाञ्चल्य और पाश्चात्ताप, (५) विचिकित्सा = शंशय । जब तक यह पाँच बातें उपस्थित रहती हैं तबतक समाधि का लाभ नहीं हो सकता । इसीसे इन्हें नीवरण = रुकावट = समाधि के लिए रुकावट कहते हैं ।

अन्तिम नीवरण 'शंशय' है । शंशय को पालि में 'वेय्यग्घ' भी कहते हैं । जंगल में संध्या समय पेड़-पौधों को देख कर भी वाद्य का शंशय उत्पन्न हो जाता है । इसी से 'शंशय = विचिकित्सा' को वेय्यग्घ कहते हैं । इन पाँच नीवरणों में अन्तिम विचिकित्सा = वेय्यग्घ है, इसलिए उन सभी को 'वेय्यग्घपञ्चम' के नाम से कहा ।

इन पाँच नीवरणों पर विजय प्राप्त कर जो समाधि प्राप्त होती है उसे समय समाधि, कहते हैं । और, अनित्य-अनात्म-दुःख पर समाधि प्राप्त कर जो संयोजनों का प्रहाण करना है उसे विपश्यना-समाधि कहते हैं । पहले को 'लौकिक' और दूसरे को 'लोकोत्तर' समाधि भी कहते हैं ।

गाथा २९९—कायगता—देखिए २९२ ।

गाथा ३३९—छत्तीस श्रोत—अठारह धातु- बाह्य और अभ्यान्तर भेद से छत्तीस ।

गाथा ३४१—सरितानि=स्मृतानि । पहले की बातों को याद करना बड़ा प्रिय होता है, ऐसा भी अर्थ करते हैं ।

गाथा ३४४—यह एक भिन्दु को लक्ष्य करके कहा गया है जो राग में पड़ फिर भी गृहस्थ हो गया । एक बार गृह-बन्धन से मुक्त हो फिर उसी बन्धन में पड़ा ।

गाथा ३५०—पाँच नीचे के संयोजनों को काटे, पाँच ऊपर के संयोजनों छोड़े [देखिए गाथा २९५] । श्रद्धा, स्मृति, वीर्य, समाधि और प्रज्ञा इन पाँच इन्द्रियों का अभ्यास करे । पाँच बन्धनों को पार कर गया—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन पाँच स्कन्धों की आशक्ति से मुक्त ।

गाथा ३५५—समथ और विदर्शना—देखिए २९५।

गाथा ३६७—नद्धि = यहाँ, द्वेष । रस्ती = यहाँ, राग । पगहेः = मोह । जूए को फेंक = अविद्या के सारे भार को छोड़ ।

पाद-सूची

गाथा के प्रथम पाद काले अक्षरों में है ।

अ		अञ्जा निञ्जाण	७५
अककसं	४०८	अञ्जाय	२७५, ४११
अकतं दुक्तं	३१४	अञ्जा हि	७५
अकतञ्जुसि	३८३	अञ्जेवापि	४३
अकिञ्च,	२९२, २६३	अञ्जेसं	३६५
अकिञ्चन	२२१, ३९६, ४२१	अट्टीनं नगरं	१५०
अकोच्छि मं	३, ४	अगुं थूलं	४०६
अकोधनं	४००	अगुं थूलानि	२६५
अकोधेन	२२३	अगुमत्तोपि	२८८
अकोसं	३६६	अतित्त येव	४८
अस्वरानं	३५२	अतिरोचति	५९
अस्त्रातारो	२७६	अतिवाक्यं	३२०
अस्त्रातो वे	२७५	अनवञ्जाय	१६८
अग्निपरिचरे	१०७	अत्तजं	१२१

अत्तनो कम्म	२१७	अथो जातिकखर्यं	४२३
अत्तनोपन	२५९	अथो पेत्तेय्यता	३३२
अत्तनोव	५०	अथो ब्रह्मञ्जता	३३२
अत्तनो सुख	१३१, १३२, २६१	अथो वाचाय	२३४
अत्तानं उपमं	१२९, १३०	अथो सरीरग्नि	१५१
अत्तानं चे	१५७, १५९	अदस्सनं	४६
अत्तानं दमयन्ति	८०, १४५	अदस्सनेन	२०६
अत्तान मेव	१५८	अदुद्धो यो	३९९
अत्ताहवे	१०४	अधिगच्छे	३६८, ३८१
अत्ताहि अत्तनो	६२, १६०, ३८०	अधिचित्ते च	१८५
अत्ताहि किर	१५९	अनत्यपद	१००, १०१, १०२
अत्थं गच्छन्ति	२२६, २९३, ३८४	अनन्वाहत	३९
अत्थं धम्मञ्च	३६३	अनपेक्खिनां	३४६, ३४७
अत्थं हित्वा	२०९	अनवट्टित चित्तस्स	३८
अत्यग्निं जातमिह	३३१	अनवस्सुत चित्तस्स	३६
अयञ्जमनुसासेय्य	१५८	अनागारेहि	४०४
अथ निब्बिन्दति	२७७, २७८, २९९	अनागारो	४१५, ४१६
अथ पापानि	१३६	अनिकसावो	६
अथ पापो	११९	अनीघो याति	२९४, २९५
अथ बालो	६९	अनुद्धानमला	२४१
अथ भद्रा	१२०	अनुपादाय	८९, ४१४
अथ वरस	१४०	अनुपादियानो	२०
अथवा समाधि	२७१	अनुपुञ्जेन	२३६
अथ सम्प महारत्ति	३८७	अनुविञ्च	२२६
अथस सन्धे	३८४	अनूपवाद्दो	१८५
अथायं इत्तग	८५	अनेकजाति संसार	१५३

अभिभुय्य सन्वानि	२२८	अविरुद्ध	४०६
अभिमन्यति	१६१	अवेरेन च	५
अभिवद्वव	३३५	अससट्ट	४८४
अभिवादन सीलिस्स	१०६	असज्जायमत्ता	२४१
अभिवादना उज्जु	१०८	असतं भावन	७३
अभूतवादी	३०६	असतं होती	७७
अमर्तं तं	३७४	असता च न	३६७
अमृतोगध	४११	असत्त सुगतं	४१९
अमानुसी	३७३	असन्तेस्य	३०४
अमित्तेनेव	६६, २०७	असम्भा च	७७
अयसाव मलं	२४०	असरीरं	३७
अयोगा भूरि	२८२	असाधु साधुना	२२३
अयोगे युद्धमत्तानं	२०६	असारञ्च असारतो	१२
अरियच्चट्टिकं मग्ग	१९१	असारे सारमत्तिनो	११
अरियप्पवेदिते	७९	असाहसेन	२५७
अरियान	२२, १६४	असुम भावयति	३५०
अरियोति	२७०	असुभानुपस्सिं	८
अरुकाय	१४७	असोक विरज	४१२
अलङ्कतो चेपि	१४२	असोको सोकिनिं	२८
अलञ्जिता ये	२१६	अस्मालोका	२२०
अलद्धा	१५५, १५६	अस्मि लोके	१६८, १६९, २४२, ४१०
अलापूनेव	१४९	अस्स भद्रं व "	३८०
अलीनेनप्पगम्भेन	२४५	अस्सद्धो .	६७
अवज्ज	३१९	अस्मा यथा	९४
अवज्जे	३१८	अस्सो भद्रो	१४३
अविज्जापरम	२४३		

अस्सो यथा भद्रो	१४४	आसवा तत्स	२५३
अहं नागोव	३२०	आसा यत्स	४१०
अहिंसका	२२५	आहारे च	६३
अहिंसाय रतो	३००		
अहिंसा सञ्जमो	२६१	इच्छा दोसा	३५९
अहिंसा सञ्चपाणानं	२७०	इच्छा मानो च	७४
अहोस्तानु	२२६	इच्छ लोभ	२६४
		इतिवालत्स	७४
आ		इतिवालो	६२, २८६
आकासे पदं	२५४, २५५	इति विञ्जाय	१८६
आकासे यन्ति	१७५	इदं पुरे	३२६
आकासेव	६२, ९३	इध तप्पति	१७
आचार कुसलो	३७६	इध नंदति	१८
आजानीया	३२२	इध पञ्जत्स	३०५
आतापिनो	१४४	इध मांदति	१६
आतुरं	१४७	इध वस्सं	२८६
आतुरेषु	१८९	इध सोचति	१५
आदान पटिनिस्सग्गे	८९	इध हेमन्त गिग्घिमु	२८६
आपज्जति	३०९	इधेव खय मत्तनो	४०२
आयुं पाचेन्ति	१३५	इधेव मेसो	२४७
आयु वरणो	१०९	इन्दखीलूपमो	६५
आरगेरिष	४०१	इन्द्रिय गुत्ति	३७५
आगघये मग्गं	२८१	इन्द्रियेणु असंवुत्तं	७
आराम वक्ख चेत्यानि	१८८	इन्द्रियेषु नुसंवुत्तं	८
आय सो	२५३	इनेत्तमिति	१९६
आरोग्य परमा	२०४	इत्तुक्की नच्छरी	२६२
आवासेणु च	७३		

उ		उय्युञ्जन्ति	११
उक्लिप्तपलिषं	३६८	उय्योगमुखे	२३५
च्छिन्द सिनेह	२८५	उसभं पवर	४२२
उजुं करोति	३३	उसीरथोव	३३७
उज्झितस्मिं	५८	उसुकारा	८०, १४५
उद्धानकालम्हि	२८०	उसुकारोव	३३
उद्धानवतो	२४	उस्तुकेमु	११९
उद्धानेनपमादेन	२५	-	ए .
उत्तमत	३८६, ४०३	एक अत्यपदं	१००
उत्तिष्टे	१६८	एकं गाथापदं	१०१
उदक हि	८०, १४५	एकं घम्मं	१७६
उदकुम्भोपि	१२१, १२२	एकं घम्मपदं	१०२
उदक्विन्दु	१२१, १२२	एक वनस्मिं	३६५
उदक्विन्दूव	३३६	एक चरिय	६१
उद्ध सोतोति	२१८	एकञ्च जेय्य	१०३
उन्नलान	२९२	एकञ्च भावित्तानं	१०६, १०७
उपनीत वयो	२६२	एकन्तं	२२८
उपसन्तस्स	६६	एकस्स चरितं	३३०
उपसन्तो	२०१	एकासनं	३०५
उपसन्तोति	३७८	एकाह जीवितं	११०, १११
उपपत्तिञ्च	४१९	११२, ११३, ११४, ११५	
उपेतो दमसच्चेन	१०	एको चरमतन्दितो	३०५
उप्पल अथ	५५	एको चरे	३२६, ३३०
उभो निच्छेय्य	२५६	एको दमय भत्तानं	३०५
उभोपिते	३०६	एको सतुसितो	३६२
उभो सङ्गं	४१२	एत एो सरण	१९२

एतं जत्वा	२०३	एव सुभासिता	५१, ५२
एतं दल्हं	३४६	एव मेतं अभिञ्जाय	७५
एतं द्वेषापथं	२८२	एवमपि तण्हानुसये	३३८
एतं बुद्धान सासनं	१८३, १८५	एवम्भो पुरिस	२४८
एतं मलं	२४३	एस खो दल्हं	३४९
एतं विसेसतो	२२	एस खो व्यन्ति काहिति	३५०
एतं सरणं	१९२	एसच्छेच्छति	३५०
एत मत्थवसं	२८६	एस घम्मो	५
एतमपि छेत्वानं	३४६, ३४७	एस पत्तोसि	१३४
एतमिह तुम्हे	२७४, २७५	एस मग्गो	२७७, २७८, २७९
एते तयो	२८१	एसोव मग्गो	२७४
एतेसं गन्धजातानं	५५	ओ	
एतेहि तीहि	२२४	ओक मोकं	९१
एथ पस्सथिमं	१७१	ओक मोकत	३४
एवं अतिघोन चारिनं	२४०	ओका अनोकं	८७
एवं अभावितं	१३	ओघ तिण्णो	३७०
एवं गामे	४६	ओपुण्णाति	२५२
एवं गोपेथ	३१५	ओवदेय्यनुसासेय्य	७७
एवं जरा च	१३५	ओहारिनं सिथिलं	३४६
एवं जातेन	५३	क	
एवं घम्मनि	८२	कसो उपहतो	१३४
एवं निन्दापसंसासु	८१	कटुकप्प भेदनो	३२४
एवं रागञ्च	३७७	कएहं घम्मं	८७
एवं लोकं	१७०	कतकिच्चं	३८६
एवं सङ्कार भूतंसु	५६	कतञ्च सुकतं	३१४
एवं सुभावितं	१४	कतपुञ्जो	१६, १८

कतानि अकतानि	५०	कि तं अजिन साटिया	३९४
कत्तन्व	५३	कि ते जटाहि	३६४
कम्मारो	२३९	किच्चा किच्चेसु	७४
कयिरा चे	३१३	किच्चे सातच्च	२९३
कयिरा थेतं	११८	किच्छं मच्चान	१८२
कयिरा मालागुरो	५३	किच्छं सदम्म सवर्न	१८२
करं बालो	१३६	किच्छो बुद्धानं	१८२
करोति सो	१६२	किच्छो मनुस्स	१८२
करोन्ता पापकं	६६	किसं धमनिस्सन्थतं	३९५
कलं अग्घति	७०	कुञ्जरा च	३२२
कलिव कित्वा	२५२	कुतो पुत्ता	६२
काकसूरेन	२४४	कुमुदं सारदिकं व	२८५
कापोतकानि	१४९	कुम्भुपमं	४०
कामतो जायति	२१५	कुसलस्स उपसम्पदा	१८३
कामतो विप्पमुत्तस्स	२१५	कुसलेन	१७३
काम भव	४१५	कुसलो	४४, ४५
कामे पनुद	३८३	कुसीतं हीनवीरियं	७
कामेसु च	२१८	कुसीतो हीन वीरियो	११२
कायदुच्चरितं	२३१	कुसो यथा	३११
कायप्पकोपं	२३१	को इमं	४४
कायस्स मेदा	१४०	कोचि लोकरिस्मिं	१४३
कायेन च	२८१	को तं निन्दितु	२३०
कायेन सवरो	३६१	कोधं जहे	२२१
कायेन संबुता	२३४	को धम्मपदं	४४
कायेन संबुतो	२३१	कोनु हासो	१४६
कासावकण्ठा	३०७	कोहिनायो	१६०

ख		गावो पाचेति	१३५
खनातीता हि	३१५	गिर सच्च	४०८
खनो वे मा	३१५	गिही पञ्जिता	७४
खन्तिबलं	३९९	गुत्तं सन्तर	३१५
खन्ती परमं	१८४	गोपो व गावो	१९
खन्धानं	३७४		
खिप्पं धम्मं	६५	घ	
खिप्पं वायम	२३६, २३८	घानेन संवरो	३६०
खिप्पमेव	१३७, २८९	च	
खीणमच्छेव	१५५	चक्कं व वहतो	१
खीणासवं	४२०	चक्खुना संवरो	३६०
खीणासवा	८९	चजे मत्ता सुखं	२६०
खेमी अवेरी	२५८	चत्तारि अरिय सच्चानि	१९०
		चत्तारि ठानानि	३०६
ग		चत्तारो धम्मा	१०९
गच्छे देवान	२२४	चन्दं, च विमलं	४१३
गच्छेय्य	३२३	चन्दनं तगरं	५५
गतद्धिनो	६०	चरं चे नाधिगच्छेय्य	६१
गतितेसं	९२	चरन्ति बाला	६६
गन्धातेसं	२११	चरेय्य तेनत्तमनो	३२८
गव्भमेके	१२६	चापातो पतितं	३२०
गम्भीर पठव्वं	४०३	चित्तं गुत्तं	३६
गरुकं वापि	१३८	चित्तं दन्तं	३५
गहकारकं	१५३	चित्तं रक्खेथ	३६
गहकारक दिट्ठोसि	१५४	चित्तं राजरथूपमं	१७१
गहकूटं	१५४	चित्तकखेपं व	१३८
गामे वा यदि	६८	चित्तक्खेसेहि	८८

चित्तस्य दमथो	३५		भ	
चिर दुक्त्वाय	२४८	झायभिक्षु		३७१
चिरप्पवासिं	२१६	भायि विरज मासीनं		३८६
चुति यो वेदि	४१९	भायिनो		२७६
		भायी तर्पाति		३८७
			अ	
छन्दजातो	२१८	जाति मित्ता		२१९
छायाव अनपायिनी	२	जतीन व		२०७
छिन्नोपि रुक्खो	३३८	जत्त बालस्स		७२
छिन्दसोतं	३८३		ड	
छुद्धो अपेठविञ्जानो	४१	डहं अग्गीव		३१
छेत्वा नन्धि	३६८	डहन्त बाल		७१
छेत्वा न मारस्स	४६		त	
छेत्वा रागञ्च	३६९	तं कुल सुखमेघति		१९३
छेत्वा वनञ्च	२८३	तं जनो		२१७
		त तादिस		२०८
		त नाम रूपस्मिं		२२१
जञ्जा पु०नपरानि	३५२	तं पुग्गलमेव		३४४
जय वेरं	२०१	तं पुत्तपसु		२८७
जिघच्छा परमा	२०३	तं भूमि		९८
जिगण कोञ्चाव	१५५	तं वे देवा		३६६
जितं अपजितं	१०५	त वे नप्पसहति		८
जितञ्च रक्खे	४०	तं वे परम		१६३
जितमस्स	१७९	त वे पसइति		७
जिने कदरियं	२२३	तं वो वदामि		३३७
जिह्वा रूपरस	६५	तजज्जह		३२६
जीरन्ति वे	१५१			
जेत्वामार	१७५			

तज्ज कर्म	६८	तथत्तानं	२८२
तज्ज दिस्वा	३४०	तथारूपस्त	१०५
तएहं लोके	३३६	तथेवकतपुञ्जम्पि	२२०
तएहक्खय रतो	१८७	तदुञ्जय	२४०
तएहक्खयो	३५४	तनुकेत्थ	१७४
तएहानं	१५४	तमहं त्रूमि ब्राहमणं	३८५, ३८६
तएहा नत्थि	१८०	३९१, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८	
तएहा भव	४१६	३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३	
तएहाय जायती	२१६	४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८	
तएहाय मूलं	३३७	४०९, ४१०, ४११, ४१२ ४१३	
तएहाय विप्प मुत्तस्स	२१६	४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८	
तएहा लोके	३३५	४१९, ४२० ४२१, ४२२, ४२३	
तएहा वडढति	३३४	तमहं सारथि	२२२
ततो ततो	३९०	तमेव त्रालं	१२५
ततो धि यस्स	३८९	तम्बुद्ध मनन्त	९७९, १८०
ततो नं दुख्खमन्वेति	१	तग्धि छन्दं	११८
ततो नं सुखमन्वेति	२	तस्सिनाय पुरक्खता	३४२, ३४३
ततो निव्वाणमेहिंसि	३६९	तसेसु थावरेसु	४०५
ततो पामोज्ज ब्रहुलो	३७६	तस्मा तस्सिनं	३४३
ततो मला	२४३	तस्मा न चद्रगू	३०२
ततो सम्मन्ति	६	तस्मा नरो	३१०
तत्तो अग्गि	३०८	तस्मा पव्वजितोति	३८८
तत्राभि रतिमिच्छेय्य	८८	तस्मापियं	२११
तत्रा यमादि	३७५	तस्मा सञ्जमयत्तानं	३८०
तत्थेव तत्थ	३०३	तस्माहि विगतिक्खेसु	३५६
तत्थ योमङ्कु	२४९	तस्माहि वीत	३५६, ३५७, ३५८

तादिसं परिडतं	७६	थ	
तादिसं भजमानस्य	७६	थेरो इति	२६१
तानि दिस्वान	१४९	थोक थोर्क	२३९
तिणदोसानि	३५६, ३५७, ३५८, ३५६	थोक थोकम्पि	१२१, १२२
तिरणसोक	१९५	द	
तिरणो पारगतो	४१४	दज्जाप्पस्मिम्पि	२२४
तित्ति कामेसु	१८६	ददन्ति वे	२४१
तिन्न मजतर	१५७	दन्त अन्तिम	४००
तिन्नरागस्स	३४९	दन्तं नयन्ति	३२१
तीरमेवानुभावति	८५	दन्तं राजाभिरूहति	३२१
तुट्ठी सुखा या	३३१	दन्तो दन्तेन	३२३
तुम्हेहि किच्चं	२७६	दन्तो सेट्ठो	३२९
ते जना	८६	दन्ध हि करोतो	११६
ते भायिनो	२३	दन्नी सूपरसं	६४
ते तादिसे	१९६	दल्हमेतं	३१३
तेनेव सो होति	१७७	दसन्नमज्जतर	१३७
ते यन्ति	२२५	दसन्नसस	२७४
ते लोके	८९	दारु न मयन्ति	८० १४४
ते वे जाति	३४१	दिट्ठि निस्साय	१६५
ते वे सुपरि	२३४	दिन्न होति ३५६, ३५७, ३५८, ३५९	
तेष बड्ढन्ति	२९२	दिन्न अरिय	२३६
तेसं सम्पन्नसीलानं	५७	दिन्नं योगं	४१७
तेषावसिता	३४१	दिवातपति	३८७
ते सारं अविगच्छन्ति	१	दिसोदिसं	४२
ते सारन विगच्छन्ति	११	दिस्वाकम्म	१५, १६
		दिपदानञ्च	२७३

दीवं सन्तस्स	६०	दूरतो सोत्थि	२१९
दीवमदान	२०७	दूरेसन्तो	३०४
दीवा जागरतो	६०	देवा आभत्सरा	२००
दीवो बालानं	६०	देवा गन्वञ्च	४२०
दीपं कयिराय	२५	देवानं सेट्ठतं	३०
दुच्छदुःखखं	१६१	देवापि तत्स	९४
दुक्खं सेति	२०१	देवापि तेसं	१८१
दुक्खमुपेन्ति	३४२	देवापि नं	२३०
दुक्खस्स च	१९१	दोस दोसा	३५७
दुक्खस्सन्तं	२७५, ३७६	घ	
दुक्खा जाति	१५३	घनं सेट्ठ'व	२६
दुक्खानु पतितद्दगू	३०२	घनपालको नाम	३२४
दुक्खाहि सारम्भ कथा	१३३	घम्मं अनुविचिन्तयं	३६४
दुक्खूप समगामिनं	१९१	घम्मं अनुत्सरं	३६४
दुक्खो पापस्स	११७	घम्मं कायेन	२५९
दुक्खो बालेहि	२०७	घम्मं चरे	१६९
दुक्खो समान	३०२	घम्म सुचरितं	१६८
दुग्गा उद्धरयत्तानं	३२७	घम्मचारी	१६८, १६९
दुग्निग्गहस्स	३५	घम्मटं	२१७
दुप्पञ्चो	१११	घम्मटोति	२५७
दुप्पट्ठञ्जं	३०२	घम्मपीति	७६, २०५
दुरक्खं	३३	घम्मस्स गुत्तो	२५७
दुरवासा	३०२	घम्मस्स होति	२०
दुल्लभो	१६३	घम्माराभो	३६४
दुस्सीलो	११०, ३२०	घम्मोघम्मानु	८६
दूरङ्गमं	३७	घी ब्राह्मणस्स	३८९

धीरञ्च पञ्चञ्च	२०८	न त माता	४३
धीरोच दानं	१७७	न तं होति	३१२
धीरो च सुख	२०७	न तक्करो होति	१९
धीरो बाले	२८	न तग्भि छन्द	११७
धोरग्ह सील	२०८	न तावता	२५६
		न ते कामगवेसिनो	९९
न अत्तहेतु	८४	न तेन अरियो	२७०
न अन्तनिक्खे	१२७, १२८	न तेन थेरो	२६०
न इच्छेय्य	८४	न तेन पण्डितो	२५८
न उच्चावच	८३	न तेन भिक्खु	२६६
न कहापण वस्सेन	१८६	न तेन होति	२५६
न कामकामा	८३	नत्थि खन्दसमा	२०२
न किलिस्सेय्य	१५८	नत्थि जागरतो	३९
नगर यथा	३१५	नत्थि भान	३७२
नगरूपम	४०	नत्थि जातिसु	२८८
न च दुक्खानुपत्तितो	३०२	नत्थि तग्हा	२५१
न चन्दन	५४	नत्थि दोस	२०२, २५१
न चाहं ब्राह्मणं	३६६	नत्थि पापं	१२४, १७६
न चाहु न च	२२८	तत्थि बाले	६१, ३३०
न चेतरहि	२२८	नत्थि बुद्धान	२५५
न जच्चा होति	३९३	नत्थि मोह	२५१
न जटाहि न गोत्तेन	३६३	नत्थि राग	२०२, २५१
न तं कम्मं	६७	नत्थिलोके	२२७
न त कथिरा	११७	नत्थि सङ्को	१७१
न तं दल्हं	३४५	नत्थि सन्तिपरं	२०२
न तं दुच्चरित	१६९	नत्थि सोको	२१२, २१३, २१४

न नग्ग चरिया	२१५, २१६	न सीलव्वत मत्तेन	२७१
न निकेते	१४१	न सो कासावमरहति	०
नन्दी भव	९१	न सो दिवा वा	२४९
न पव्वतानं	४१३	न सो घम्मं	६४
न परेसं	१२७, १२८	न सो सङ्गत धम्मानं	७०
न पिता नपि	५०	न सो सव्वत्य	१९३
न पुत्त मिच्छे	२८८	न हनेय्य	१२९, १३०
न पुन जाति	८४	न हि एतेहि	३२३
न पुप्फगन्धो	२३८, ३४८	न हि पव्वजितो	१८४
न ब्राह्मणस्स	५४	न हि पापं	७१
न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि	३८६	न हि वेरेन	५
न भजे पापके	३६०	नाञ्जमञ्जो	१६५
न भजे पुरिसाधमे	७८	नाञ्जेसं पिहयं	३६५
न भागवा	७८	नाथं लभति	१६०
न मन्तं	१९	नानासका	१४१
न मारो सह	१२१, १२२	नाव्वणं विस	१२४
न मुण्डकेन	१०५	नात्स मुञ्जेथ	३८९
न मोनेन	२६४	निग्गय्हवादिं	७६
न वाकरन	२६८	निज्जं उज्ज्मान	२५३
न विज्जती	२६२	निच्चं कायगतासति	२९३, ३९९
न वे कदरिया	१२७, १२८	निच्चं कायेन	२२५
न सक्कापुजं	१७७	निच्चं दलहपरक्कमा	२३
न सन्ति पुत्ता	१९६	निच्च धम्मगतासति	२९७
नसमिज्जन्ति	२८८	निच्चं पज्जलिते	१४६
न सिया लोकवद्धमो	८१	निच्चं बुद्धगतासति	२९६
	१६७	निच्चं वद्धापचायिनो	१०९

निच्च सह्यगतासति	२९८	निरयं सो	१४०
निच्चं सञ्जत चारिनो	१०४	निरयमिह	३१५
निच्चं सुचिगवेसिना	२४५	निरयायूप	३११
निच्चमेव	२०६	निरासयं	४१०
निट्टङ्गतो	३५१	निरत्ति पद	३५२
निद्वरो होति	२०५	निहीनकम्मा	३०६
निदायिता	३२५	नीयन्ति धीरा	१७५
निद्ध तमलो	२३६, २३८	नक्ख जम्बोन	२३०
निद्धमे मलमत्तनो	२३९	नेक्खम्मूप	१८१
निधाय दण्डं	४०५	नेत श्रजत	२२७
निधीनं व	७६	नेतं खो सरणं	१८९
निन्द ततीय	३०९	नेतं सरण	१८९
निन्दन्ति	२२७	नेव देवो	१०५
निन्ने वा यदि	९८	नोचे पारगवेसिनो	३५५
निप्पपञ्चा	२५४	नो चे लभेथ	३२६
निब्भत्तति	३३८	नोच्चावचं	८३
निब्बना होथ	२८३		
निब्बाण	१८४, २०३,		
	२०४, २२६ २८५		
निब्बाण गमनं	२८९	पसुकूलधरं	३९५
निब्बाणस्सेव	३२	पक्खन्दिना	२४४
निब्बुते	१९६	पङ्को सचोव	३२७
निम्मनाहोथ	२४३	पन्ध्या तपति	३१४
निरत्थ व	४१	पन्ध्या सो	१७२
निरयं ते	३०७	पञ्च चुत्तारि	३७०
निरय पाप	१२६३	पञ्च छिन्दे	३७०
		पञ्च सङ्गातिगो	३७०
		पञ्जातस्स	१५२

प

पञ्जा नत्थि	३७२	पन्नभारं	४०२
पञ्जा न परिपूरति	३८	पपञ्च समतिक्रन्ते	१९५
पञ्जा पासादमारुह्य	२८	पपञ्चाभिरत्ता	२५४
पञ्जाय मर्गं	२८०	पप्पोति विपुलं	२७
पञ्जावन्तस्स	१११	पञ्चतट्ठी' व	२८
पञ्जा सील	२२९	पञ्चतानि	१८८
पटिकोसति	१६४	पञ्चाजयत्तनो	३८८
पटिज्जगोय्य	१५७	पमादं अप्पमादेन	२८
पटिदण्डा	१३३	पमादमनुयुञ्जन्ति	२६
पटिपन्ना	२७६	पमादेन	१६७
पटिवद्ध मनोव	२८४	पमादे भय	३१, ३२
पटिमासे	३७९	पमादो गरहितो	३०
पटिसन्धार	३७६	पमादो मच्चुनो	२१
पठविं अधिसेस्सति	४१	पमादो रक्खतो	२४१
पठवीसमो	६५	परदारञ्च	२४६
परिडत्तं-	६४, ६५	परदुक्खूप दानेन	२६१
परिडतोति	२५८	परवज्जानु पस्सिस्स	२५३
परिडतो वापि	६३	परिक्खयं व-	१३९
परिडतो सील	२८९	परिजिन्नमिदं	१४८
परुडु पलासोव	२३५	परिनिव्वन्ति	१२६
परिरूपे	१५८	परिपक्को	२६०
पथव्या एकरज्जेन	१७८	परिप्लव पसादस्स	३८
पर्दं तस्स	९३	परिकंदतिदं	३४
पदीपं न	१४६	परियोदपेय्य	८८
पदुमं तत्थ	५८	परिलाहो	९०
पन्थञ्च	१८५	परिसप्पन्ति	३४२, ३४३

परेच न विजानन्ति	६	पामोज्ज बहुल्लो	३८१
परेस पान भोजने	२४९	पारगू होति	३८४
परेस हि सो	२५२	पारापार	३८५
पलेति रसमादाय	४९	पियं ज्जातिं व	२२०
पविवेक रसं	२०५	पियतो जायति	२१२
पसन्नो बुद्धसासने	३६८, ३८१	पियतो विप्पमुत्तस्स	२१२
पस्स चित्त कत्तं	१४७	पियानं अटस्सनं	२१०
पस्सतो	११३, ११४, ११५	पिमा पायो हि	२११
पस्से चे विपुलं	२९०	पिहेत्तत्तानु	२०९
पहस्सथ	१४४	पीति भक्खा	२००
पहीन मानस्स	९४	पुञ्ज चे पुरिसो	११८
पाणिमिह चे	१२४	पुञ्ज मे कतन्ति	१८
पातिमोक्खे च	१८५, ३७५	पुञ्ज सुखं	३३१
पाथेय्यमिप च	२३५, २३७	पुञ्ज पाप	३९
पापं चे पुरिसो	११७	पुञ्जानि	२२०
पाप मे कतन्ति	१७	पुत्ता मत्थि	६२
पापकारी	१५, १७	पुत्तेसु दारेसु	३४५
पाप घम्मा	२४८, ३०७	पुनगेई	१५४
पापस्मि रमती	११६	पुनप्पुनं	३२५
पापाच्चित्त	११६	पुप्फानि हेव	४७, ४८
पापानं अकरन	३३३	पुब्बे निवासं	४२३
पापानि परिवज्जये	१२३	पुराणानि	१५६
पापानि परिवज्जेति	२६६	पुरेक्खा रञ्च	७३
पापा पापेहि	३०७	पूजा परकुलेसु च	७३
पापियो न	४२	पूजारहे	१९५
पापोपि परसति	११६	पूरति धीरो	१२२

पूरति बालो	१२१	वाहेत्वा ब्रह्मचरिय वा	२६७
पेच सो	१३१, १३२	बुद्धे यदि व	१९५
पेमतो जायति	२१३	बुद्धो तपति	३८७
पेमतो विष्पमुत्तस्स	२१३	व्यासचामनसं	४७, ४८, २८७
पोराण मेतं	२२७	ब्रह्मुनापि	२३०
फ		भ	
फन्दनं चपलं	३३	भजेथ	७८, २०८
फलमिच्छं' व	३३४	भद्रोपि पस्सति	१२०
फलानि कट्टकत्सेव	१६४	भये चा भय	३१७
फुसन्ति धीरा	२३	भवाय विभवाय	२८२
फुसामि	२७२	भस्मच्छन्नो'व	७१
फेनूपमं	४६	भावनाय रतो	३०१
व		भासति वा	१, २
बद्धोक्रवलं	३२४	भिक्षु आकङ्क्षी	३४३
बलिवद्दोव	१५२	भिक्षु बुद्धस्स	७५
बहु' वे सरणं	१८८	भिक्षु विस्सास	२७२
बहुनापि	१६६	भिक्षु होति	२६६
बहुम्पि चे	१६	भिजति पूतिसन्देहो	१४८
बाल सङ्गतचारीहि	२०७	भिय्यो आकरिते	३१३
बाला दुग्धेधिनो	२६	भिय्यो तण्हा	३४९
बाला ह्वे	१७७	भिय्यो तप्पति	१७
बालो च परिडतमानी	६३	भिय्यो नन्दति	१८
बाली भुञ्जेथ	७०	भीतस्स भीताय	३१०
बाहित पापोति	३८८	भोग तण्हाय	३५५
बाहिरं परिमज्जसि	३९४	भोगानं'व	१३९
बाहु सञ्चेन	२७१	भोजनग्धि	७, ८

भोवादि नाम	३९६	मनुजस्त पमत्त	३३४
म		मनुस्सा भय	१८८
मंस लोहित	१५०	मनो दुच्चरितं	२३३
मंसानि तस्स	१५२	मनोपकोपं	२३३
मग्गानट्टङ्गिको	२७३	मनो पुब्बङ्गमा	१, २
मग्गामग्गस्स	४०३	मनो सेट्ठा	१, २
मच्चु श्रादाय	४७, २८७	ममेव अतिवसा	७४
मच्चु धेय्य	८६	ममेव कतमब्बन्तु	७४
मच्चु राजा	१७०	मयमेत्थ यमामसे	६
मच्छेर	२४२	मरणन्तं हि	१४८
मज्जे च नत्थि	४२१	मरीचि धम्मं	४६
मज्जे मुञ्च	३४८	मलं वणणस्स	२४१
मत्तञ्जुता	१८५	मलावे पापका	२४२
मत्तभाणी	३६३	मल्लित्थिया	२४२
मत्तासुख	२६०	महापब्बो	३५२
मह्वानी	३७७	महावराहोव	३२५
मधुरं तस्स	३६३	हेमसि विजिताविर्नं	४२२
मधू'वा मब्बति	६६	मा कन्दि	३७१
मनसा च	२१८	मा कामरति	२७
मनसा चे	१, २	मात् लोभो	२४८
मनसा नत्थि	३९१	मातरं पितरं	२६४, २६५
मनसा सबो	३६१	माते कामगुणे	३७१
मनसा सबुता	२३४	मानो मक्खो	१५०, ४०७
मनसा सबुतो	२३३	मा पमाद	२७
मनसा सुचरित	२३३	मा पियेहि	२१०
मनापस्सवना	३३०	भाप्प मब्बेथ	१२१, १२२

मारवेयं	३४	मूह रूपो	२६८
मारस्तेतं	२७४	मेत्ता विहारी	३६८
मारो भ्रञ्जि	३३७	मोक्खन्ति	३७
मारो मर्गं	५७	मोघजिन्नोति	२६०
मालुवा सालमिवोत्थतं	१६२	मोह दोषा	३५८
मा लोद्गुलं	३७१	य	
मावो च फरुसं	१३३	यं एसा सहती	३३५
मावो नलं व	३३७	यं ओघो नाभिकीरति	२५
मासे मासे	७०, १०६	यं कत्वा	६७, ६८ ३१४
मिच्छादिष्टि	१६७	यं किञ्चि यिद्धं व	१०८
मिच्छादिष्टि	३१६, ३१७, ३१८	यं किञ्चि सिथिलं	३१२
मिच्छा पणिहितं	४२	यं पस्ते	७६
मिच्छा सङ्कप्पगोचरा	११	यं यं पदेसं	३०३
मितभाणिम्पि	२२७	यं वे हितञ्च	१६३
मित्तोः भजस्तु	३७५	यं सुत्वा	१००, १०१, १०२
मिद्धी यदा होति	३२५	यं हि किञ्चं	२६२
मुञ्चपुरे	३४८	यं होति	६६
मुत्तो वन्धनमेव	३४४	यञ्चे भुञ्जेय्य	३०८
मुद्धमस्स	७२	यञ्च वत्ससतं	१०६, १०७
मुनी तेन	२६९	यञ्चे विञ्च्	२२६
मुसावादञ्च	२४६	यतो यतो	३७४, ३६०
मुसावादस्स	१७६	यत्थ अरहन्तो	९८
मुहुत्तमपि	६५, १०६, १०७	यत्थ काम	३५, ३६
मूलं खनति	२४७	यत्थ गन्त्वा	२२५
मूलं पञ्जाय	३४०	यत्थ जरा च	१५०
मूलं पञ्चं	२५०, २६३	यत्थट्ठितं	१२८

यत्थद्वितो	१२७	यमलोकञ्च	४४, ४५
यत्थ न रमती	९९	यम्हा धम्मं	२६२
यत्थ बाला	१७१	यम्हि भानञ्च	३७२
यत्थ सो ज्ञायतो	१९३	यम्हि सच्चञ्च	२६१, ३६३
यथञ्जमनुसासति	२५९	यस्स अच्चन्त	१६२
यथागारं	१३, १४	यस्स अस्सुमुखो	६७
यथात्तना	३२३	यस्स कायेन	३६१
यथा दयडेन	१३५	यस्स गति	४२०
यथानं इच्छती	१६२	यस्स चेतं	२५०, २६३
यथा पसादन्न	२४९	यस्स छत्तिं सति	३३६
यथा पस्से	१७०	यस्स जालिनी	१८०
यथापि पुण्फरासिम्हा	५३	यस्स जितं	१७६
यथापि भमरो	४६	यस्स नत्थि	१४७, ३६७
यथापि मूले	३३८	यस्स पतीतो	६८
यथापि रहदो	८२	यस्स पापं	१७३
यथापि रुचिरं	५१, ५२	यस्स पारं	३८५
यथा बुब्बुल्लकं	१७०	यस्स पुरे	४२१
यथा भूरि	२८२	यस्स रागो	४०७
यथा सङ्कार	५८	यस्सालया	४११
यदा च पच्चति	६९, ११९, १२०	यस्सासवा	६३
यदा द्वयेसु	३८४	यस्सिन्द्रियानि	६४
यदा निसेधो	३६०	यसो भोग	३०३
यदानुदति	२८	याचार्य इतरा	१०४
यदा पञ्जाय	२७७, २७८, २७९	यानिमानि	१४६
यदायसं	३४५	यायं तगर	५६
यमपुरिसापि च	२३५	याय नाभिसजे	४०८

यावं हि वनतो	२८४	येसं नो नत्थि	२००
याव जीवमि	६४	येस सन्निचयो	६२
यावता बहु	२५८, २५९	येसं सम्बोधि	८६
यावता भिक्खते	२६६	ये सच्च सुसमारद्धा	२६३
यावदेव	७२	यो अप्पदुट्टस्स	१२५
यावन्तेस्य	३३७	यो इमं पलिपथं	४१४
यावपापं	६९, ११९	योगक्खेमं	२३
याव भद्रं	१२०	योगस्मिं च	२०९
युञ्जति बुद्धसासने	३८२	योगा वे जायति	२८२
युवावली	२८०	यो च अत्थं	२५६
ये च खो सम्म	८६	यो च अप्पमि	२५९
ये च तत्थ	६	यो च तुलं'व	२६८
ये चित्तं सञ्जमेस्सन्ति	३७	यो च पुण्वे	१७२
ये जना पारगामिनो	८५	यो च बुद्धच्च	१६०
ये भान पसुता	१८१	यो च वन्तकसावस्स	१०
ये तं उपनय्हन्ति	३	यो च समेति	२६५
ये तं न उपनय्हन्ति	४	यो च सोलवतं	५६
ये नत्थं सहसा	२५६	यो चापि कत्वा	३०६
ये न पाणानि	२७०	यो चे गाथा	१०२
ये नस्स पलितं	२६०	यो चेतं सहती	३३६
ये निच्छुक्कं	३२६	यो चे वस्ससत्तं	१०५, ११०
ये पमत्ता	२१	से ११५ तक	
ये परिञ्जात भोजना	९२	योति वाक्यं	३२१
ये रागरत्तानु	३४५	यो दण्डेन	१३१, १३२, १३७
ये सं दिवा च २९६ से ३०१ तक		यो दुक्खस्स	४०२
येसं नत्थि	२११	यो घ कामे	४१५
		यो घ तण्हं	४१६

यो ध दीघ	४०९	रतिया जायति	२१४
यो ध पुञ्जञ्च	२६७, ४१२	रतिया विष्णुत्तस्व	२१४
यो धर्म	२५९	रत्ति आभाति	३८७
योषेध मारं	४०	रत्ति खित्ता	३०४
यो नरा अनुयुञ्चति	२४७	रथं मन्तं व	२२२
यो नलिम्पति	४०१	रमणीयानि	६६
यो न हन्ति	४०३	रसं उपसमस्व च	२०५
यो निबं मत्ति	३९६	रस्मिगाहो	२२२
यो निन्दं	१४३	रहदोव	९५
यो निष्कणतो	३४४	रागञ्च दोसञ्च	२०
यो पाणमति	२४६	रागदोसा	३५६
यो बालो	६३	रागो न समति	१४
यो मुख सञ्चतो	३६३	रागो समति	१३
यो मुनाति	२६९	राजतो वा	१३६
यो यजेथ	१०६	राजा च दण्डं	३१०
यो वत्थं	९	राजानो द्वे च	२९४, २९५
यो वे ष्पत्तितं	२२२	राजा व र्हं	३२९
यो वे नपरितस्सति	३९७	रोग निड्ढ	१४८
यो सहस्त्रं	१०३		
यो सासनं	१६४	ल	
यो हवे दहरो	३८२	लज्जिनाये	३१६
		लता उग्भिञ्ज	३४०
		लभती पीति	३७४
		लोके अदिन्मं	२४६, ४०९
रक्खेय्य नं	१५७		
रञ्जो च जल्लं	१४१	व	
रट्ठं सानुचरं	२९४	वची दुच्चरितं	२३२
रट्ठं पिण्डं	३०८	वचीपकोपं	२३२
रति सो	१८७	वच्छो खीर	२८४

चजिर वस्ममयं	१६१	वितक्क पमथि तस्स	३४६
चज्जञ्च	३१६	वितक्कूपसमे च	३५०
चज्जे चा वज्ज	३१८	वितिण्ण परलोकस्स	१७६
चरणगन्ध	४९	विपाकं पटिसेवति	६७, ६८
चरण पोक्खरताय	२६२	विप्पमुञ्चेथ	३७७
चरणवन्तं	५१, ५२	विप्पमुत्तस्स	९०
चनं छिन्दथ	२८३	विप्पसन्नमनाविलं	४१३
चनतो जायती	२८३	विप्पसन्नेन	७९
चनन्ते रमितो	३०५	विप्पसन्नो	८२
चन मुत्तो वनमेव	३४४	विप्पसीदन्ति	८२
चन्त लोक्कामिसो	३७८	विमोक्खो	९२, ९३
चरमस्सतरा	३२२	विरागो सेट्ठो	२७३
चरमादाय	२६८	विरियमारभतो	११२
चस्सिका विय	३७७	विचिच्च सयनेन	२७१
चाचानुरक्खी	२८१	विवेकमनुब्रूह्ये	७५
चाचाय संवुत्तो	२३२	विवेके यत्थ	८७
चाचाय सञ्चतो	३६२	विसं जीवितुक्कामोव	१२३
चाचाय सुचरितं	२३२	विसङ्कारगतं	१५४
वाणिजोव	१२३	वित्तं धम्मं	२६६
वाति देवेसु	५६	विस्सास परमा	२०४
वातेन न समीरति	८१	विहराम	१९७, १९८, १९९
वातो द्दक्खं'व	७	वीततण्हो	३५१, ३५२
वातो सेलं'व	८	वीतदरं	३८५
चारिजो'व	३४	वीतरागा	९९
चारि पोक्खर	४०१	बुट्ठी न समति	१४
चासोपि च	२३७	बुट्ठी समति	१३
चाहा चरन्ति	३३९	बुत्ता पटिवदेय्युत्त	१३३

वेदनं फरुसं	१३८	सङ्कार परमा	२०३
वेद्यग्ध पञ्चमं	२९५	सङ्कारानं खर्यं	३८३
वेर तेस	३	सङ्कारा सस्तता	२५५
वेर तेग्रूप	४	सङ्कारूपसमं	३६८, ३८१
वेरससगा	२९१	सङ्गातिगं	३९७
वेरा सो	२९१	सङ्गामे मानुसे	१०३
वेरिनेसु	१९७	सङ्गश्च सरणं	१९०
वेरी वा पन	४२	सचित्त परियोदपनं	१८३
		सचित्तमनुरक्खथ	३२७
		सचे नेरेसि	१३४
संयोजन सङ्गसत्ता	३४२	सचे लभेथ	३२८
संक्छरं	१०८	सचे होति	३९६
संयुत तीहि	३९१	सच्चं भने	२०४
ससन्न	८८०	सच्चान चतुरो	२७३
ससारं मोह	४१४	सच्चेन	२२३
ससारा न	९५	सज्जुखीरं व	७१
सककम्मनि	२४०	सञ्जतस्स च	१४
सकुन्तो जालमुत्तोव	१७४	सञ्जमन	२५
सक्कच्च	३९२	सञ्जोजनं	३१ २२१
सकार	७५	सठिलोहि	३१३
सगं मुगतिनो	१२६	सतं हि सो	७७
सग्गस्स गमनेन	१७८	सतञ्च गन्धो	५४
सग्गापायञ्च	४२३	सतञ्च घम्पो	१५१
सङ्कप्पा रागनिस्सिता	३३९	सतानं सम्पजानानं	२९१
सङ्क सर	३१२	सत्ता गच्छन्ति	३१६, ३१७
सङ्किलिद्धञ्च	३१२		३१८, ३१९
सङ्किलिद्धेन	२४४		
सङ्गाय लोके	२६७	सदत्थ पमुतो	१६६

सदागोतम सावका	२९६, २९७,	सर्वं रसं	३५४
२९८, २९९, ३००, ३०१		सर्वगन्थप्पहीनस्स	९०
सदा जागरमानानं	२२६	सर्वज्जहो	३५३
सदा रमाति	७९	सर्वत्य विमुत्त	३४८
सद्धं आरद्ध	८	सर्वत्य वे	८३
सद्धभं अविजानतं	६०	सर्वत्य संवृतो	३६१
सद्धम्म अविजानतो	३८	सच्चदानं	३५४
सद्धम्मा न	३६४	सच्चदुक्खा	१८९, १९२, ३६१
सद्धाय सीलेन	१४४	सच्चपापस्स	१८३
सद्धो सीलेन	३०३	सच्चम्मि तं	१०८
सद्धिं चरं	३२४, ३२९	सच्चयोग विसं युत्तं	४१७
सन्तं तस्स	६६	सच्चलोकाधिपच्चेन	१७८
सन्त कायो	३७८	सच्चलोकाभिभुं	४१८
सन्तचित्तस्स	३७३	सच्च वोसित वोसानं	४२३
सन्त वा सुसमाहितो	३७८	सच्च संयोजनं	३६७
सन्ता वाचा च	९६	सच्चस्स दुक्खस्स	३३१
सन्तिमग्गमेव	२८५	सच्चसो नामरूपस्सिं	३६७
सन्तुद्धी परमं	२०४	सच्चा ते फासुका	१५४
सन्तो दन्तो	१४२	सच्चादिशा	५४
सन्तो ह्वे	१५१	सच्चाभिभू	३५३
सन्दामं	३९८	सच्चै तसन्ति	१२६, १३०
सन्धाविस्सं	१५३	सच्चै धम्मा	२७६
सन्धिच्छेदो	९७	सच्चै भायन्ति	१२९
सन्तद्धो	३८७	सच्चैसं जीवित	१३०
सन्निवासो	२०६	सच्चै सद्दारा	२७७, २७८
सफला होति	५२	सच्चैसु धम्मैसु	३५३
सच्चं रतिं	३५४	सच्चैसु भूतेसु	१४२

स भागवा	२०	सय अभिञ्जा	३५३
समगानं	१९४	सय कतं मङ्कटकोव	३४७
समन्नरियाय	३८८	सरितानि	३४१
समणो किं	२६४	सरीरस्स च	१३८
समणोति	२६५	सत्ताभ	३६५, ३६६
समणो नत्थि	२५४, २५५	सवन्त दोषो	२६३
समणो होति	१८४	सवन्ति सब्बधि	३४०
समाधिं अधिगच्छन्ति	२४९, २५०	सवे अन्तिम	३५२
समाधि नाधिगच्छति	३६५	सवे उत्तम	६७
समाधिना धम्म	१४४	सवे कासावमरहति	१०
समितत्ता हि	२६५	सवे दिवा वा	२५०
स मुनी तेन	२६९	सवे धम्मघरो	२५९
समेन नयति	२५७	सवे निब्बाण	३७२
सम्पन्न विज्जा	१४४	सवे बालोति	६३
सम्पयातोसि	२३७	सवे भिक्खूति	२६७, ३६७
सम्पस्स विपुल	२९०	सवे वन्तमलो	२६१
सम्बुद्धान सतीमत्तं	१८२	सवे सङ्गाम	१०३
सम्मन्तीध कुदाचन	५	सवे होति	३९६
सम्मदञ्जा	५७, ९६	स वीळवा	८४
सम्मप्यजानो	९०	सहस्समपि	१००, १०१
सम्मप्यञ्जाय	१९०	सादानेसु	४०६
सम्माचित्तं	८९	साधु । जब्हाय	३६०
सम्मादिद्धि समादाना	३१६	साणो	२६२, २६३
सम्मा धम्मं	३१३	"	३६१
सम्मा पण्डितं	-	"	३६१
सम्मा सङ्गप्यगोचर	-	६	३६०, ३६१

सायेव पूजना	१०६, १०७	सुखेन फुट्टा	८३
सारञ्च सारतो	१२	सुखो पञ्जाय	३३३
सारत्त रत्ता	३४५	सुखो पुञ्जस्त	११८
सारम्भो ते	१३४	सुखो बुद्धानं	१६४
सारे चासार	११	सुचि कम्मस्त	२४
सात्तपोरिव	४०७	सुचि गन्धं	५८
साहुदस्सनमरियानं	२०६	सुजीवं	२४४
सिञ्च भिक्खु	३६६	सुञ्जतो	९२, ९३
सित्ता ते	३६९	सुञ्जागारं	३ ३
सिथिलो हि	३१३	सुत्तं गामं	४७, २८७
सीति भूतं	४१८	सुत्तेसु बहुजागरो	२९
सीलगन्धो	५५	सुदन्तो वत	१५९
सीलदस्सन	२१०	सुदस्सं वज्जं	२५२
सीलवन्तं	४००	सुदुदंसं	३६
सीलवन्तस्स	११०	सुदस्स पोसस्स	१२५
सीलेसु सुसम्माहिते	१०	सुद्धाजीवि	३६६
सुकरानि	१६३	सुद्धाजीवे	३७५
सुक्कं भावेथ	८७	सुद्धा जीवेन	२४५
सुखं भिक्खु	३७९	सुद्धि असुद्धि	१६५
सुखं याव	३३३	सुप्पबुद्धं	२६६ से ३०१ तक
सुखकामानि	१३१, १३२	सुभानुपस्सिं	७
सुखा मत्तेय्यता	३३२	सुमरति	३२४
सुखा संघस्स	१९४	सुरामेरय	२४७
सुखा सद्धम्म देसना	१९४	सुसुकं वत	१६७ से २००
सुखा सद्धा	३३३	सेखो धम्मपद	४५
सुखा सामञ्जता	३३२	सेखो पठविं	४५
सुखुमो रत्तो	१२५	सेन्ति चापातिखीनाव	१५६

स भागवा	२०	सय अभिञ्जा	३५३
समगगानं	१९४	सयं कतं मकटकोव	३४७
समचरियाय	३८८	सरितानि	३४१
समणो किं	२६४	सरीरस्स च	१३८
समणोति	२६५	सत्ताभ	३६५, ३६६
समणो नत्थि	२५४, २५५	सवन्त दोषो	२६३
समणो होति	१८४	सवन्ति सव्वधि	३५०
समाधि अधिगच्छन्ति	२४९, २५०	सवे अन्तिम	३५२
समाधिं नाधिगच्छति	३६५	सवे उत्तम	६७
समाधिना धम्म	१४४	सवे काणावमरद्दति	१०
समित्ता हि	२६५	सवे दिवा वा	२५०
स मुनी तेन	२६९	सवे धम्मघरो	२५९
समेन नयति	२५७	सवे नि०वाण	३७२
सम्पन्न विञ्जा	१४४	सवे बालोति	६३
सम्पयातोसि	२३७	सवे भिक्खूति	२६७, ३६७*
सग्गस विपुलं	२९०	सवे वन्तमलो	२६१
सम्बुद्धानं सतीमत्तं	१८१	सवे सङ्गाम	१०३*
सम्भन्तीध कुदाचनं	५	सवे होति	३९६
सम्भदञ्जा	५७, ९६	स सीलवा	८४
सम्भज्जानो	१०	सहस्समपि	१००, १०१
सम्भज्जाय	१९०	सादानेसु	४०६
सम्भाचिरे	८९	साधु । जब्हाय	३६०
सम्भादिहि समादाना	३१६	साधु रूपो	२६२, २६३
सम्भा धम्मं	३७३	साधु याचाय	३६१
सम्भा परिदिरे	६३	साधु सन्त्थ	३६१
सम्भा सङ्कप्पगोचरा	१२	साधु सोतेन	३६०, ३६१
सम्भा सम्बुद्ध	५९, १८०, ३९२	सामञ्जं दुप्पयमट्ठं	१११

सायेव पूजना	१०६, १०७	सुखेन फुट्टा	८३
सारञ्च सारतो	१२	सुखो पञ्जाय	३३३
सारत्त रत्ता	३४५	सुखो पुञ्जस्स	११८
सारम्भो ते	१३४	सुखो बुद्धानं	१६४
सारे चासार	११	सुचि कम्मस्स	२४
सासपोरिव	४०७	सुचि गन्धं	५८
साहुदस्सनमरियानं	२०६	सुजीवं	२४४
सिञ्च भिक्खु	३६६	सुञ्जतो	९२, ९३
सिञ्चा ते	३६९	सुञ्जागारं	३ ३
सिथिलो हि	३१३	सुत्तं गामं	४७, २८७
सीति भूतं	४१८	सुत्तेसु बहुजागरो	२९
सीलगन्धो	५५	सुदन्तो वत	१५९
सीलदस्सन	२१०	सुदस्सं वज्जं	२५२
सीलवन्तं	४००	सुदुदसं	३६
सीलवन्तस्स	११०	सुदस्स पोसस्स	१२५
सीलेसु सुसमाहिते	१०	सुद्धाजीवि	३६६
सुकरानि	१६३	सुद्धाजीवे	३७५
सुक्कं भावेथ	८७	सुद्धा जीवेन	२४५
सुखं भिक्खु	३७९	सुद्धि असुद्धि	१६५
सुखं याव	३३३	सुप्पबुद्धं	२६६ से ३०१ तक
सुखकामानि	१३१, १३२	सुभानुपत्तिं	७
सुखा मत्तेय्यता	३३२	सुमरति	३२४
सुखा संघस्स	१९४	सुरामेरय	२४७
सुखा सद्धम्म देसना	१९४	सुसुकं वत	१६७ से २००
सुखा सद्दा	३३३	सेखो धम्मपद	४५
सुखा सामञ्जता	३३२	सेखो पठविं	४५
सुखुमो रत्तो	१२५	सेन्ति चापातिस्सीनाव	१५६

सेय्य सदिसमततो	६१	हंसा दिच्च	१७५
सेय्य सो नं	४३	हंसाव पल्ललां	६१
सेय्यो अयोगुलो	३०८	हंसावकासो	१७
सेय्यो होति	७६	हत्थमेवानु	३११
सेळो यथा	८१	हत्थ सञ्जतो	३६२
सेहि कम्मोहि	१३६	हत्थिप्पभिन्न	३२६
सो अत्तगुत्तो	३७९	हन्ति अञ्जेव	३५५
सो इम लोके	१७२, १७३, ३८२	हन्ति बालस्स	७२
सो करोहि	२३६, २३८	हनन्ति भोगा	३५५
सोका तग्हा	३३६	हरेय्य पाणिना	१२४
सोका तस्स	३३५	हित्वा कामे	८८
सोतापत्ति फलं	१७८	हित्वा जय	२०१
सो धेन्ति मच्चं	१४१	हित्वा भानुसकं	४१७
सो प्लवति	३३४	हित्वा याति	२२
सो ब्राह्मणो	१४२	हित्वा रतिञ्च	५१८
सोमनस्सानि	३४१	हिमवन्तो व	३०४
सो मोदति	१६	हिरीनि सेधो	१५३
सो मुची सोच	३९३	हिरीमत्ता च	२४५
सो सोचति	१५	हीनं धम्मं	१६५

ह